मालवीय प्रकाशन
नजीराबाद, लखनऊ

मूल्य
रु० २.१०

मुद्रक—
प्रेम प्रिंटिंग प्रेस,
गोलागंज, लखनऊ

प्रकाशक की ओर से—

काव्य का शरीर भाषा तथा आत्मा भाव होता है, इसीलिए काव्य का पूर्ण रूप से परिचय प्राप्त करने के लिए उसके शरीर (भाषा) एव आत्मा (भाव) तक पहुँचना आवश्यक होता है। 'आधुनिक कवि पन्त—टीका' मे टीकाकार ने इसका पूर्ण ध्यान रखा है। अवतरणिका, शब्दार्थ, पद का अर्थ और टिप्पणी देकर पदो को स्पष्ट कर दिया गया है। आवश्यकतानुसार अलङ्कार आदि भी दे दिये गये हैं, जो विद्यार्थियो के लिए लाभदायक सिद्ध होगे।

'टीका' की भाषा सरल एव स्पष्ट रखी गयी है, जिससे विद्यार्थी अर्थ तथा भाव तक आसानी से पहुँच जाँय।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह टीका विद्यार्थियो के लिए सहायक सिद्ध होगी।

आधुनिक कवि पन्त—टीका

१—मोह (१-५१८)

अवतरणिका—कवि शैशव से प्रकृति की अलौकिक छवि पर मुग्ध होता आया , जैसी इस कविता के शीर्षक मे स्पष्ट है। कवि का "मोह" प्रकृति जगत् के ति अधिक है। ससार के स्थूल भौतिक आकर्षण उसके लिए इतने महत्त्वशाली ही है जितने प्रकृति के दिव्य आकर्षण—प्रकृति-सौंदर्य के इस स्वर्गीय प्रेम को छोड-र कवि मानव-जगत् के सीमित शारीरिक आकर्षण से प्रभावित नही हो सकता ;—इसी भावना को कवि ने इस कविता मे पल्लवित किया है।

१—छोड़ जग को—शब्दार्थ—द्रुम=वृक्ष। माया=ममता या मोह। ाल जाल=केशपाश। लोचन=आंख।

हे बाले ! वृक्षो की कोमल और घनी छाया का आनन्द छोडकर और प्रकृति की सम्पूर्ण माया ममता को छोडकर मैं अभी से तुम्हारे सौंदर्य के प्रति किस प्रकार आकृष्ट हो जाऊँ ! तुम्ही बताओ, तुम्हारे इन घने केशपाश मे अपने नयनो को कैसे उलझा दूँ ! प्रकृति के इस मनोरम ससार को अभी से कैसे भूल जाऊँ। ऐसा मैं अभी नही कर सकता हूँ।

१—इस कविता के प्रत्येक पद्य मे दो परस्पर विरोधी या सदृश वस्तुएे उपस्थित की गई हैं। एक प्रकृति से सम्बन्ध रखती है और दूसरी मानव जगत् से। इन पंक्तियो मे एक ओर द्रुमो की छाया प्रकृति की माया है और दूसरी ओर बाला के बाल-जाल हैं। कवि की वृत्ति का झुकाव प्रकृति की ओर अधिक दिखाया गया है।

२—"बाले" का सम्बोधन बहुत सार्थक रूप मे हुआ है। बाला यहाँ पर मानव जगत् के आकर्षण की प्रतीक है। मानव जगत् मे नारी का सौंदर्य सब से अधिक आकर्षक होता है। तिस पर भी बाला का यौवन और किशोरावस्था की सन्धि वाली वय मे नारी को बाला कहा जाता है। यह वय यौवन से भी अधिक मोहक होती है। रीतिकालीन कवि तो बाला के पीछे हाथ धोकर पडे हुए थे। उन शृङ्गारी कवियो के लिए प्रकृति गौण थी, और नारी मुख्य। नवीन युग के आगमन के साथ, इस मलिन-पङ्क से कविता का उद्धार हुआ। प्रकृति की प्रधानता स्वीकृति की जाने लगी। अत यह सम्बोधन रीतिकालीन कवियो की ओर एक छींटा भी है।

३—"छाया और माया" शब्दो से मातृत्व की भी अभिव्यक्ति हो रही है। प्रकृति कवि के लिए मानो माँ है। इस पक्ष मे छाया का अर्थ अचल की छाया या अभय शरण होगा। प्रकृति-जननी की कोमल और शीतल छाया या शरण का

किशोर कवि को आकृष्ट करना अस्वाभाविक नही। 'छाया' शब्द से बाह्य शारीरिक सुख बताया गया है, जो कवि को प्रकृति-माँ के सान्निध्य मे प्राप्त होता है। 'माया' शब्द हृदय की अनुभूति बता रहा है। बालक की माँ और माँ की बालक मे कितनी माया होती है। वह किसी भी मूल्य पर मा अलग नही हो सकता है। छटपटाता है। इस अवस्था मे मातृत्व भावना प्रबल हुआ करती है।

४—"द्रुमो की छाया" के विरोध मे "बाल जाल" की उपस्थिति मे कवि की दृष्टि सूक्ष्म सादृश्य की ओर रही है। छाया की श्यामलता और सघनत उधर केशपाशो मे भी है। मलयानिल का सा सौरभ बाला के केश पाशो मे है। दोनो मे बाह्य सादृश्य है। परन्तु बाल-जाल मे 'माया' की हृदयानुभूति नही है। वह प्रकृति मे ही है।

५—"जाल मे उलझा दूँ" के प्रयोग ने थोडे मे बहुत कुछ कह डाला है मछली या पक्षी को धोखा देकर फँसाने के लिए जाल फैलाया जाता है। कवि को धोखा देकर फांसने के लिए बाला का बाल-जाल फैला है। पर कवि बडा सजग और सचेत है। वह धोखे को भली भांति समझता है। इसीलिए "उलझा दूँ" इस प्रेरणार्थक क्रिया का प्रयोग हुआ है। जान बूझकर उलझने के लिए स्व कैसे प्रेरित कर दू। अपने नयनो को स्वय समझ बूझकर कैसे फँसा दू ? इस प्रयो मे एक विशेपता और भी है। उधर प्रकृति में तो ममता माया का माधुर्य है परन्तु इधर उलझन है, आपत्ति है।

६—"अभी से" शब्द से यह अभिव्यक्ति होती है कि कवि मे अभी यौवन भाव का विकास नही हुआ है। उसमे बाला के बाल-जाल मे लोचन उलझाने की अनुभूति अभी उत्पन्न ही नही हुई है। इसलिए बाला मे वह साक्षात् प्रश्नात्मक निपेध कर रहा है।

७—"इस जग" मे यह ध्वनि निकलती है कि कवि सदा प्रकृति के जग के सन्निकट रहता है। अत वह प्रकृति के जग को सकेत करके बाला को दिखा रहा है। उसके लिए मानव जग वह (दूरस्थ) जग है और प्रकृति का जग यह (निकटस्थ) जग है।

८—"जग" शब्द यहाँ उपमान है और प्रकृति उपमेय है जो लुप्त है। प्रकृति का अध्याहार करके, प्रकृति-जग अर्थ करना पडेगा, तभी अर्थ स्पष्ट होगा। प्रकृति को जग कहने से कवि का आशय है कि मानव-जगत् मे जैसे असभ्य व्यवहार एव मर्म सन्ताप हुआ करते हैं, उसी प्रकार प्रकृति का भी एक अलग ससार है। इधर मानव भौतिक जगत् मे आसक्त रहते है। परन्तु कवि को प्रकृति के जगत् से ही मोह है।

२—तरल जग को—शब्दार्थ—भ्रूभग=टेढी भौंह। तरल=सरस, बहने वाला पदार्थ।

नदी, झील और सागर की तरल और चंचल तरगो मे कितना आकर्षण है ? ऊपर आकाश मे छाये हुए इन्द्र धनुप के रगो मे कितनी अलौकिक सुन्दरता है ! कवि उनपर मुग्ध है। अत वाला से कहता है कि हे वाले ! प्रकृति के इन मनोरम दृश्यो को छोडकर मैं तुम्हारे धनुषाकार टेढी भौहो से अपने मृग रूपी मन को जान बूझकर कैसे विधवा दूं ? अपने भोले मन की हत्या स्वय कैसे कर लूं।

१—"तरल तरग" और "इन्द्र धनुष" के विरोध मे प्रस्तुत किये गये भ्रूभग मे मार्मिक सादृश्य है। जैसी तरलता तरङ्गो मे है वैसी ही आंखो में भी है, जैसा वृत्तकार इन्द्र धनुष है वैसे ही भ्रू युगल भी। भृकुटि से धनुप की उपमा देना साहित्य में प्रचलित है। इतना सादृश्य होने पर भी कवि वाला के भ्रूचापों के सौंदर्य की ओर आकृष्ट नही होता है, क्योकि वाला के नयनो का सौंदर्य सीमित है, और उसकी तरलता भी नयनो तक ही सीमित है, परन्तु प्रकृति की तरङ्गो की तरलता नि सीम है और इन्द्रधनुप का सतरगी सौंदर्य भी अनन्त आकाश में व्याप्त है।

२—"मृगमन" से अभिप्राय है कि कवि का हृदय वहुत भोला और निष्कपट है। उसके चौकडी भरने के लिए प्रकृति का विस्तृत प्राङ्गण ही चाहिये, मृग के भोलेपन का लाभ सभी अहेरी उठाना चाहते हैं। धनुप से उसको विद्ध करना चाहते हैं। वाला भी यही चाहती है।

३—"विधवा दूं" इस प्रेरणार्थक क्रिया का प्रयोग वडी मार्मिकता से किया गया है। मृग यदि धोखे से विंध जाय तो उसका निजी अपराध नही। वह तो धोखा ही है। परन्तु जान वूझकर स्वय तीर कमान के सम्मुख आकर यदि कोई मृग आत्मघात की चेष्टा करता है तो अवश्य उसी का अपराध होगा। अत कवि जान-वूझकर ऐसा धोखा नही खाना चाहता है। वह सदा चौकन्ना रहता है। समझ कर भी कैसे विंधवा देगा ?

<u>३—कोयल का श्रवन</u>—शब्दार्थ—मधुकर=भौंरा। अनमोल=अमूल्य। सजनि=प्रिया सखी। श्रवन=कान।

ऊपर के पदो में मन एव नयनो के आकर्पण की वस्तुयें कवि ने प्रस्तुत की हैं। इन पक्तियो में कवि कानो के आकर्पण की स्थापना कर रहा है। वह कहता है—हे वाले ! कोयल का वह कोमल सङ्गीतमय स्वर प्रकृति के ससार में मुझे आनन्दित करता है और वहा भ्रमरो के गुञ्जार में वीणा की मृदु झङ्कार अन्त करण को मुग्ध कर देती है। तव तुम्ही कहो, केवल तुम्हारे ही प्रिय स्वर को कैसे सुनता जाऊं। तुम्हारे स्वर से ही अपने कानो को भर कर प्रकृति के सगीत के लिए उनमें अवकाश क्या न वचाऊं।

१—इस पद्य का शब्द चयन ऐसा सतुलित और नियमित है कि एक-एक शब्द में कल्पना एव सुन्दर भाव-चित्र उपस्थित होते है। वैसे तो पन्तजी की समस्त रचनाओ में वर्णो का नाद-सौदर्य रहता है। पर यहाँ सम्वन्ध विषय भी सगीत

बोल और अनमोल, इनका अनुप्रासात्मक माधुर्य कितना श्रुति-मधुर है ? इन द
पक्तियो के 'क' वर्णो की कोमल आवृति भी कितनी कोमल है ? प्रतीत होता है कि
वीणा के साथ वस्तुत कलकल सङ्गीत ही हो रहा हो। विषयानुरूप वर्ण सन्नि
वेश का यह सुन्दर उदाहरण है।

२—यहाँ कवि ने एक सुन्दर चित्र की कल्पना की है। गायिका कोयल है ज
स्त्रीलिङ्ग है। नर-कण्ठ की अपेक्षा नारी-कण्ठ का सगीत अधिक मोहक और मधु
होता है। उधर विरोध के समकक्ष मे भी नारी का स्वर प्रस्तुत है। गायिक
कोयल के साथ साज बाज बजाने वाला पुल्लिङ्ग मधुकर है जो वस्तुत म
(माधुर्य) की सृष्टि करने वाला "यथा नाम तथा गुण" है। सघनच्छाया वा
वन्य प्रान्त की हरियाली मे दोनो कलाकार युवक, युवती मिलकर एक साथ सगी
की मधुर सर्जना कर रहे हैं। ऐसा मनोरम दृश्य सामान्य मानवो को भी बरब
आकृष्ट कर लेता है। कवि तो प्रकृति का एकनिष्ठ उपासक ही है, उसका क
कहना ?

३—"ही" शब्द से यह अभिव्यक्ति होती है कि बाला कवि से बहुत आग
कर रही है कि कवि केवल उसी का सगीत सुना करे। परन्तु कवि उसका निषे
कर रहा है।

४—"सजनि" सम्बोधन मे भी एक विशेषता है। अन्य पक्तियो की भा
यहाँ पर कवि ने "बाले!" सम्बोधन नही दिया है। कवि का भाव यह है
बाले! तुम मेरी भली ही सजनी (सहचरी) हो, और तुम्हारे साथ मेरा ऐ
निकट और घनिष्ट सम्बन्ध है, फिर भी तुम हो तो मानव-जगत् की ही।
से अधिक घनिष्ठता और सामीप्य मेरा प्रकृति के साथ है जिसका सम्मोहन म
खींचे हुए है।

५—"प्रिय स्वर" मे प्रिय विशेषण से व्यक्त होता है कि बाला का स्वर
यद्यपि आकर्षक है, पर इतना नही जितना प्रकृति के गायक-वादको का।

४—ऊषा सस्मित—शब्दार्थ—सस्मित=मन्द मुसकानवाली। ऊषा
प्रभात। किसलय दल=नये-नये कोमल पत्ते।

सुधारश्मि=चन्द्रमा की किरणें। अधरामृत=होठो की मधुरिमा। मद

मा को और भी तरलित किये रहती हैं। प्रकृति की ऐसी अमृतमयी मुस्कान,
र हिमबिन्दु से तरलित किसलय-दल के अधरों का सौन्दर्य कवि को आकृष्ट
ता रहता है। अत वह कहता है कि हे बाले! तुम्हारा हठ मुझे मान्य
ा है।

१—इस पंक्ति के "ना" शब्द मे कितना हठपूर्ण निषेध है? तुम्हारे अधरामृत आनन्दानुभाव मे ही मैं कैसे अपना समस्त जीवन बहला दूं।

२—"बहला दूं" शब्द का भाव ध्यान देने योग्य है। बहलाने का अर्थ है यथार्थ बातो से बहकाकर बुद्धि को भरमाये रखना, जैसे बालक को खिलौने से ुलाया जाता है। कवि का तात्पर्य है कि हे बाले! मैं बहुत सावधान हूँ, जागरूक र सचेत हूँ अपने जीवन-पथ के प्रति। जान बूझ कर मैं स्वयं को कैसे धोखा दे कता हूँ? तुम्हारे अधरामृत का उन्माद भले ही मुझे कुछ-कुछ आकृष्ट करे, पर री बुद्धि को इतना सभ्रान्त और बहका नहीं सकता है कि मैं उषा की सुधामय स्कान को बिलकुल भूल ही जाऊं।

३—"सस्मित" से ऊषा का मानवीकरण किया गया है। क्योंकि सस्मित होना ानव-व्यापार है।

२—बाल-प्रश्न

<u>अवतरणिका</u>—इस कविता की पृष्ठ भूमि बच्चों की सहज कौतूहलमयी वृत्ति तथा बाल मनोविज्ञान ही इसका आधार है। बालक स्वभावत प्रत्येक नई वस्तु ो देखकर कौतूहल किया करते हैं। उनके भोले अन्त करण मे जिज्ञासा उठती हती है। उसका समाधान पाकर उनकी जिज्ञासा शान्त हो जाया करती है। इस कविता का विषय है तो एक सामान्य घटना, पर बालक के लिए वही एक कौतूहल ा कारण बन जाती है।

शब्दार्थ—दिव्यदृष्टि=परोक्ष बातो का ज्ञान रखने वाला। कटकमय=कांटो े भरा हुआ। प्रभावान=तेजस्वी।

कुछ वर्ष पूर्व जब अलमोडे मे स्वामी विवेकानन्द जी पधारे थे, वहाँ के लोगो े उनका अपूर्व स्वागत किया था। उनके स्वागत मे पांवडे बिछाये गये और नगर र दीपावली मनाई गई। जनता मे असीम आनन्द और उत्साह हुआ था। सम्भवत उक्त घटना के समय कवि भी वहीं विद्यमान हो और उसने अपनी आँखो वह स्वागत का दृश्य देखा हो। (क्योंकि कवि की जन्म-भूमि अल्मोडा ही है।) अत. कवि एक सामान्य बालिका कृष्णा के माध्यम से उस घटना के प्रभाव और जिज्ञासा का वर्णन करता है। कृष्णा समस्त [illegible] ऐसा कौतूहल

भावनाओं का स्पन्दन हो रहा है। ये हृतन्त्री के तार नीरव हैं, ध्वनि हीन है। इनको अन्य व्यक्ति सुन नहीं सकता है। इनके सुन्दर लय की गुञ्जन केवल अनुभूति गम्य है।

भ्रमर पक्ष—मे इसका अर्थ यो होगा। अरुणोदय के समय कमल खिलते है। शीतल पवन मे कमलगन्ध का सचार रहता है। भौंरे आनन्द मग्न होकर सुन्दर लय मे गुञ्जार कर रहे हैं। यह भ्रमरो की गुञ्जार वीणा की झङ्कार की भाँति प्रतीत हो रही है।

२—चरणकमल आशय मे। अपने मन को सर्वव्यापक प्रभु के चरण रूपी कमल म अर्पण करते हुए और अपने शरीर को भस्म-लिप्त या धूलि धूसरित कर लू। उस सर्वव्यापक परमात्मा के चरणो मे मेरा मन लगा रहे और अपना जीवन ऐसा त्यागमय बना लूं कि सुन्दर वेषभूषा की वासना तथा शरीर के प्रसाधन की वृत्ति मुझ मे न रहे। मैं अपना जीवन साधु, महात्मा, सन्त और महापुरुषो की भाँति बना लूं जिनकी सांसारिक विषय-वासनायें मर गई है और जो धूलि या भस्म से अपने शरीर को रजित करके त्यागमय आदर्श उपस्थित करते हैं। हे प्रभु ! मेरा जीवन मधु के समान मधुर आनन्द रूपी रस मे मग्न कर दो। पुण्य और पवित्र कार्यों के अलौकिक आनन्द मे मैं मग्न रहा करूं। तुम्हारे चरणामृत के सरोवर मे मेरा जीवन डुबकी लगाता रहे। तुम्हारी भक्ति और उपासना मे मुझे अपूर्व आनन्द की अनुभूति होती रहे।

भ्रमर पक्ष—प्रभात काल मे कमल खिले हुए है और भौंरा मधुपान के लिए कमल मे मन अर्पण कर रहा है। कमल के अन्दर मधुपान करते हुए भौंरे का शरीर पराग

५—स्नेह

शब्दार्थ—दीप=दीपक, जीवन दीपक। बचे विकास=(१) दीपक के बुझ जाने पर तेल का फैलाव, (२) जीवन की समाप्ति पर स्मृति एव भाव रूप मे शेष रहने वाला। अनिल-सा=पवन की भांति। लोक-लोक मे=ससार के प्रत्येक स्थान मे। स्नेह=तेल, प्रेम। उर=हृदय।

अवतरणिका—प्रस्तुत कविता मे बताया गया है कि प्रेम तत्त्व विविध परिस्थितियो मे कौन से विभिन्न रूप धारण करता है। कवि का विश्वास है कि प्रेम ही जीवन का एक ऐसा प्रबल और प्रधान भाव है जो जीवन और जगत् का सचालन करता है। प्रेम की शक्ति अद्भुत एव अलौकिक है।

१—दीप के उरमे—जिस प्रकार दीपक के बुझ जाने पर उसके चारो ओर आस-पास स्नेह (तेल) फैल जाता है और वही दीपक के प्रकाश की स्मृति का चिह्न रह जाता है उसी प्रकार जीवन की समाप्ति पर व्यक्ति का स्नेह (प्रेम) ही स्मृति रूप मे अवशिष्ट रह जाता है। नश्वर जीवन मे स्नेह तत्त्व अमर है। शरीर के विनाश के साथ इसका विनाश नही होता है। दीपक का तेल भले ही सब जल जाय और दीपक भले ही बुझ जाय, परन्तु तेल का चारो ओर का विकास बचा ही रह जाता है। यह प्रेम पवन की भाति ससार के कोने-कोने मे व्याप्त है। जीवन मे चाहे हर्ष हो, चाहे शोक, प्रेम सर्व दशा मे विद्यमान रहता है। हर्ष का साक्षात् या असाक्षात् कारण भी स्नेह होता है और शोक का भी। जिस प्रकार श्वास प्रश्वास सब के हृदय मे विद्यमान रहता है उसी प्रकार जगत् के प्रत्येक कण-कण मे स्नेह व्याप्त है। कौन सा स्थान जगत् मे ऐसा है जहां स्नेह की सत्ता नही है? जब तक हृदय मे श्वास की गति रहती है तब तक जीवन भी है, उसके अभाव मे मृत्यु हो जाती है। उसी भाँति जगत् के अस्तित्व का आधार भी स्नेह ही है।

शब्दार्थ—खिले यौवन=पूर्ण युवावस्था। मधुपविलास=माधुर्यमय आनद। बुद्धि विकास=बुद्धि की वृद्धि। जरा=वृद्धावस्था। अन्तर्नयन=अन्तर्दृष्टि। हुलास=प्रसन्नता।

२—यही तो .. निःश्वास—बचपन की हँसी-खुशी यही प्रेम है। यही प्रेम शैशव अवस्था मे उनकी मधुर हँसी का स्वरूप धारण कर लेता है। बालको की निर्विकार और भोली हँसी के प्रति आकृष्ट होकर लोगो मे स्नेह का उदय होता है। उठती हुई युवावस्था मे होने वाले शृगार रूप विलास का कारण भी यही स्नेह होता है, भ्रमर जैसे मधुपान मे तन्मय होकर मत्त होता है उसी प्रकार यौवन मे प्रेमी-प्रेमिका भी पारस्परिक रति-विलास मे निमग्न रहते हैं। इसका कारण भी स्नेह ही है। व्यक्ति की प्रौढ अवस्था मे उत्पन्न होने वाला विवेक और बुद्धि एवं विकास का कारण भी यही स्नेह है, किसी स्नेह और आकर्षण से ही मनुष्य जगत् के ज्ञान-विज्ञान और नाना अनुभवो की जिज्ञासा किया करता है। वृद्धावस्था मे मनुष्य की वृत्ति

अन्तर्मुखी हो जाया करती है। जीवन भर के उत्थान-पतन और कटुताओ के अनुभवो से उसे जीवन और जगत् से विरक्ति हो जाती है, अत उसकी बहुर्मुखी दृष्टि स्वभावत अन्तर्मुखी हो जाया करती है। इस विरागमयी वृत्ति का कारण भी स्नेह ही है। विरक्ति भी एक प्रकार से आसक्ति का ही दूसरा स्वरूप है। रात के बीतने पर दिन भर विश्व मे एक कर्म शीलता, उत्साह और हुलास का सचार दिखाई पडता है वह भी प्रेम का ही स्वरूप है। जीवन रूपी दिन की प्राप्ति पर प्राणियो मे होने वाली प्रसन्नता भी इसी स्नेह का स्वरूप है और मृत्यु रूपी रात्रि के आगमन पर दु ख से भरी आह भी उसी प्रेम का एक रूप है। जब व्यक्ति पैदा होता है तब वह सबके हुलास और आनन्द का कारण बनता है। जब व्यक्ति मरता है तब वह उन व्यक्तियो की दु खमयी आह का कारण बनता है जिनका उसके प्रति स्नेह था। इस प्रकार स्नेह तत्त्व जन्म से मरण तक विविध परिस्थितियो मे विविध रूप धारण करके व्याप्त रहता है।

१—यहाँ पर जितने भी प्रेम के स्वरूप बताये गये है उन सब का स्नेह अर्थ लक्षणा वृत्ति से प्रकट होता है। यह लक्षणा प्रयोग की शैली छायावाद की प्रमुख विशेषता है।

२—है यह .... श्रवण—शब्दार्थ—वैदिक वाद=वेद मे प्रतिपादित सिद्धान्त। उन्माद=पागलपन, विक्षेप। नाद=ध्वनि। गिरा=वाणी। सनयन=आंखो के सहित। नीरव=चुपचाप।

इस स्नेह की महिमा का गान वेदो ने भी किया है। स्नेह तत्त्व समस्त विश्व के जड चेतन मे एकता स्थापित करने वाला है। ससार के व्यक्ति सुख की अतिशयता मे पागल हो जाया करते है और अत्यन्त दु ख मे भी पागल हो जाया करते हैं। इस सब के मूल मे वही कारण भूत स्नेह तत्त्व है। वेद इस बात की घोषणा करते हैं।

अग्रिम पक्तियो मे बताया गया है कि प्रेम की अलौकिक शक्ति से सब इन्द्रियाँ अपना-अपना व्यापार छोडकर परस्पर एक दूसरे का व्यापार करने लग जाया करती है। साथ ही यह भी भाव है कि प्रत्येक इन्द्रिय की अनुभूति की शक्ति अत्यन्त प्रबल हो जाती है।

प्रेम के प्रभाव से वाणी भी आँखो वाली हो जाती है। वाणी देखने का भी काम करने लग जाती है। इसका आशय यह है कि प्रेमी व्यक्ति की वाणी मे ऐसा [illegible] और [illegible] रहता है, मानो वाणी ने उस बात को स्वय देखा हो और मानो देखी हुई बात को बता रही हो। प्रेम के प्रभाव से आँखें मौन भाषण करने लग जाती है। तात्पर्य है कि प्रेमी के हृदय के भाव उसकी आँखो मे ऐसे स्पष्ट रूप मे प्रकट हो जाते है कि देखने वाला सब समझ जाता है और उन भावो को वाणी द्वारा प्रकट करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। स्नेह के प्रभाव से [illegible] है और सब बातो को [illegible] करने लगता है। अर्थात् प्रेमी

व्यक्ति के कान प्रेम पात्र की वातें सुनने के लिए इतने तन्मय हो जाया करते हैं कि तनिक सी आहट से वह वात सुन कर समझ लिया करता हैं। व्यक्ति किसी शब्द या ध्वनि को तभी श्रवण कर सकता है जब उसके मन का सयोग भी कर्मेन्द्रिय से वना रहे। भाव यह है कि प्रेमी का मन प्रेम-पात्र की प्रत्येक क्रिया और चेष्टा मे अनन्य भाव से सलग्न रहता है। साथ ही प्रेम-पात्र के प्रति मन इतना सावधान और एक निष्ठ हो जाता है कि मन मानो स्वय उसकी वातो को सुनने लग जाता है। दो प्रेमी एक दूसरे के मनोगत भावो को विना वाणी एव विना सुने ही सव कुछ जान जाया करते है। इस तथ्य का मूल आधार प्रेमी और प्रेम पात्र का मनोविज्ञान है ।

४—अश्रुओ श्वास—स्नेह की दशा मे व्यक्ति की स्थिति एक पागल के समान हो जाती है। वह कभी रोता है तो हँसी के साथ। उसके होठो मे तो हँसी रहती है पर आंखो मे आंसू। अपने प्रेमी के विरह दुःख मे ही वह सुख की अनुभूति मानता है। प्रेमी की हँसी मे भी आंसू प्रकट होने लग जाया करते हैं। हँसी की अतिशयता और आनन्द की पराकाष्ठा मे आंसुओ का प्रकट होना प्रसिद्ध है। प्रेमी के श्वासो मे दुःख भरी आह विद्यमान रहती है और कभी कभी तो विरह का इतना दारुण दुःख हो जाता है कि उसके समस्त श्वास-प्रश्वास आह से भरे रहते है। वह उच्छ्वासो मे श्वास-प्रश्वास लिया करता है।

५—वँधे हैं . हाहाकार—शब्दार्थ—झकार=प्रेम रूपी झकार। दारुण=दुःखप्रद।

सव प्राणियो के जीवन इसी प्रेम सूत्र से परस्पर सम्वद्ध हैं। यही स्नेह तत्त्व ऐसा है जो व्यक्तियो के विभिन्न जीवनो को एक सूत्र मे वांधकर ऐक्य स्थापित करता है। जीवन रूपी तार एक दूसरे से सम्वद्ध है और सभी जीवन रूपी तारो मे एक ही प्रेम रूपी झकार छिपी रहती है। जिस प्रकार विजली के तारो का परस्पर सम्वन्ध कर देने से एक तार की विद्युत् तरग सव तारो मे समान रूप से व्याप्त हो जाती है। उसी प्रकार प्रेम तत्व की विद्युत्तरग प्रत्येक जीवन मे समान रूप से व्याप्त है।

यही प्रेम तत्त्व ससार का परिचालन और नियमन करता आ रहा है। प्रेम का ही दूसरा नाम ससार है। यदि प्रेम का अस्तित्व न होता तो ससार मे भीषण हाहाकार मच जाता और सर्वत्र शोक, निराशा, दुःख और उत्पीडन ही दृष्टि-गोचर होता, केवल यही प्रेमतत्त्व जगत् और जीवन मे माधुर्य भरता है।

६—मुरली चमकीले—मुरली के सुन्दर रसीले छिद्रो की भाति प्रेम की भावनायें भी मधुर और आकर्षक होती हैं। तात्पर्य है कि मुरली के परिगणित छिद्रो द्वारा जिस प्रकार अनन्त राग रागिनियो की सृजना होती है उसी प्रकार प्रेम तत्त्व एक होने पर भी जगत् और जीवन मे नाना स्वरूप धारण करता है। जैसे एक ही प्रेम, पति-पत्नी, माता-पुत्र, भाई-वहन, मित्र-मित्र आदि के उपाधिभेद से अनन्त राग-विरागो की सृष्टि किया करता है। जीवन और जगत् की ये राग-विरा-

है। भाव यह है कि बालिका का हृदय बड़ा सरल, कोमल, निश्छल और पवित्र है। ये सब गुण उसकी साँस मे छन-छन कर आरहे है और कवि उसमे अधिकाधिक आकृष्ट होता जा रहा है।

३—"सुरभित" का लाक्षणिक अर्थ प्रोत, सना हुआ या भावित भी हो सकता है। तब अर्थ होगा कि बालिका के श्वास उसके हृदय की समस्त सुन्दर-सुन्दर भावनाओ से मानो ओत-प्रोत हैं। बालिका के सरल और भोले हृदय की कोमल भावनाओं की सुरभि से उच्छवास सने हुए हैं जो कवि के आकर्षण के मूल हेतु हैं।

२ सरलपन तरग-सी नित। शब्दार्थ—अजान नयन=भोली आँखें। लचकागान=कपित स्वर का गाना। विकचक=खिला हुआ। बाल्य=(१) सरिता, (२) बाल्यावस्था रूपी नदी। कूल=किनारे। असीम=सीमाहीन। अवसित=(१) व्याप्त, भरा हुआ, पूर्ण, (२) समाप्त।

कवि उस बालिका के अद्‌भुत सौन्दर्य का बाह्य एव आन्तरिक चित्र उपस्थित कर रहा है। उसका मन इतना सरल और भोला था कि मानो सरलता ने स्वय उसके मन का स्वरूप धारण किया हो। उसका मन समस्त सरलता का एक प्रतीक था। उसके सौन्दर्य की वृद्धि के लिए स्थूल और भौतिक आभूषणो की अवश्यकता न थी। उसमे एक अलौकिकता थी, एक निरालापन था। वही उसके सौन्दर्य की वृद्धि करने वाला आभूषण था। उसकी भोली-भाली आँखें कानो तक फैली हुई थी। उसका शरीर प्रकृति से ही सजा हुआ, सुगठित था। जन्म से ही उसके शरीर की बनावट सजी सजाई थी। उसमे कृत्रिमता बिलकुल नही थी।

ढीले और लचकीले अधरो के बीच उसका अस्फुट और कम्पित सगीत टूटे-फूटे रूप मे ऐसा सुरीला और मधुर लगता था कि मन को बरबस खीच लिया करता था। विशेष करके पूर्ण विकसित बाल्यावस्था वाले किशोरो का मन उसकी ओर एकाएक आकृष्ट हो जाता था। वह अस्फुट, टूटा-फूटा और लचकीला गाना उस बालिका के सुरीले और ढीले अधरो का उपमान बन जाया करता था। जैसे सुरीले और लचकीले उसके अधर थे वैसा ही सुरीला और लचकीला उसका गाना भी था। होंठो का सौन्दर्य किशोरो को अपनी ओर खीचता था और उसका गाना मन को। आकर्षण की क्रिया दोनो मे समान रूप मे विद्यमान थी। अत उसके अधर और उसका सगीत दोनो ही परस्पर उपमेय और उपमान बने हुए थे।

उसकी कोमल मुसकान उसके अधरो मे छिपी-सी रहती थी। प्रतीत होता था कि उसका प्रियतम उसके अधरो मे छिपा हो और उसे प्रकट करने मे वह लजाती हो। उसकी मुसकान उसी की सखी की भाँति नित्य उसी के साथ खिची हुई रहती थी जो बिलकुल उसी की भाँति सुन्दर और आकर्षक थी। उसकी वाणी मानो सखी रूपा मुसकान के साथ मान किया करती थी, रूठा करती थी। सखी भी खिची हुई थी (मान किये रहती थी) और वाणी भी मान किये रहती थी। भाव यह है कि

जिस प्रकार उस बालिका की मुसकान छिपी हुई, अस्पष्ट और कुछ स्पष्ट रहती थी उसी प्रकार उसकी वाणी भी छिपी हुई, अस्पष्ट और कुछ स्पष्ट रहा करती थी।

उसकी भावनाओ का अभी पूर्ण विकास नही हो पाया था। वे अभी अधखिली थी। उनसे ही वह सदा प्रसन्न और हर्षित थी। वे अधखिले भाव ऐसे सुन्दर और आकर्षक थे जैसे रङ्ग विरङ्गे और ओस से भीगे हुए अधखिले फूल हो। इस प्रकार वह बालिका शैशव रूपी नदी के दोनो किनारो के बीच मे तरङ्ग के समान नित्य खेला करती थी। बस इतनी बातो मे उसके जीवन के व्यापारो की, उसके ज्ञान की और उसके सौन्दर्य की सीमा बँधी थी। इतना ही उसका जगत् था और जीवन था। इसी बाल्यावस्था की परिधि मे उसके लिए असीम विश्व या सब कुछ निहित था।

१—"सरलपन और निरालापन" दोनो भाववाचक हैं और अमूर्त हैं, मन और आभूषण दोनो मूर्त हैं। यहा मूर्त वस्तुओ के लिए अमूर्त वस्तुओ का उपमान प्रयुक्त किया है। इस प्रकार का सादृश्य-विधान छायावाद की एक प्रमुख विशेषता है।

२—"अजान नयन" मे अजान शब्द भोले भाले अर्थ के लिए कवि का स्वय गढा हुआ है जो अंग्रेजी के innocent का हूबहू अनुवाद है। इस प्रकार बहुत से शब्द कवि के स्वय बनाये हुए उसकी रचना मे प्राप्त होगे, जो भाव की अभिव्यक्ति मे पूर्ण और यथास्थान प्रयुक्त हुए हैं।

३—"सहज था सजा सजीला तन" मे कवि ने बालिका के स्वाभाविक सुगठन और जन्मजात अकृत्रिम सौन्दर्य का पूरा चित्र खीच दिया है। भूषण एव बाह्य प्रसाधन के बिना स्वाभाविक सौन्दर्य के लिए इससे अच्छी अभिव्यक्ति और क्या हो सकती है? कवि पर यहा कालिदास का स्पष्ट प्रभाव है, कालिदास ने शकुन्तला के सौन्दर्य वर्णन मे कहा है—

"इद किलाव्याज मनोहर वपु।"

यहाँ पर पन्तजी अव्याज मनोहर वपु के लिए सीधी सरल हिन्दी मे "सहज सजा सजीला तन" कह रहे हैं जो वस्तुत मौलिक प्रतीत होता है।

४—मूर्त अधरो के लिए अमूर्त गान को उपमान बनाया गया है।

५—इन दो पक्तियो मे एक बात और ध्यान देने की है जो कवि के शिशु सम्बन्धी सूक्ष्म-निरीक्षण का परिचायक है। "ढीले अधर" और "अधूरा लचका गान" ये दो विशेषण अधर और गान के लिए काव्य-जगत मे सर्वथा नवीन है, छायावादी परम्परा मे भी नही हैं। कवि की नूतन-उद्भावना और उसका व्यक्तित्व इन उपमानो मे छिपा है। इनमे एक विशेष प्रकार की बालिका का चित्र उपस्थित होता है। कुछ बालक जो हँसमुख स्वभाव के होते है और मन्द मुसकान जिनके होंठो पर खेलती रहती है, उनके होठ प्राय बन्द नही रह पाते हैं, खुले ही रहते हैं। बस यही अधरो का ढीलापन है। बालको के श्वास-प्रश्वास स्वभावत बहुत हल्के और छोटे होते हैं, गाने के स्वरो को वे लम्बा नही खीच सकते हैं, अत रुक-रुक कर उनके स्वरो को पूरा या अधूरा करके छोड देते हैं, इसलिए कवि ने बालिका के गान को

चपल और चमकीला कहा है। कवि की बालिका के स्वभाव के बालक प्राय देखे भी जाते है।

६—"पी-सी मुसकान" मे अमूर्त मुसकान के लिए मूर्त उपमान प्रिय लाया गया है और इस उपमान के बल मे मुसकान का मानवीकरण भी हुआ है। दूसरी पंक्ति मे मुसकान का उपमान सखी भी है यह भी मूर्त है और मानवी है। प्रथम उपमान प्रिय पुल्लिंग है जो स्त्रीलिंग मुसकान के लिए अखरता भी नही है, क्योकि यहाँ मुसकान के साथ प्रिय की गोपनीयता ही केवल अभिप्रेत है। और फिर यथावसर लिङ्ग-विपर्यय करना कवि की स्वभावगत स्वच्छन्दता भी है।

७—"खिची" विशेषण का प्रयोग यहाँ श्लेष रूप मे किया गया है, मुसकान के पक्ष मे इसका अर्थ रेखा की भाँति खिची हुई मुसकान होगा और सखी के पक्ष मे मान की हुई और रूठी हुई या ऐंठी हुई होगा।

८—"मानगिरा धरती थी" मे गिरा (वाणी) का मानवीकरण है, क्योकि मान धारण करना मानव-व्यापार है। साथ ही सखी मूर्त मुसकान के साथ अनुनय और मान का अभिनय करने वाली दूसरी सहेली के रूप मे भी गिरा को प्रस्तुत किया गया है।

९—"रगीले गीले फूलो से अधखिले भावो से प्रमुदित" अमूर्त भावो के लिए मूर्त फूलो का उपमान-विधान किया गया है, रगीले, गीले और अधखिले ये तीनो विशेषण फूलो के भी होगे और भावो के भी। रगीले भाव और गीले भाव का तात्पर्य यह है कि बालिका के भाव बडे सुन्दर और चित्र विचित्र है साथ ही सरस भी हैं, परन्तु उनका पूर्ण विकास नही हुआ है, अत अस्फुट और अधखिले है जो बालिका की वय के अनुरूप ही है।

१०—"तरग सी" के उपमान द्वारा बालिका की चचलता, तरलता और कलकल ध्वनि आदि भावो की अभिव्यक्ति हो रही है। यह भी ध्वनित हो रहा है कि उसमे इतनी मृदुलता, सुकुमारता और सरलता है कि तट या मर्यादा से बाहर होने की उसमे न सामर्थ्य है न चाह ही। अभी उसकी अवस्था खेलने-कूदने की है।

११—इन सब पंक्तियो की एक विशिष्टता यह भी है कि कवि ने जितने भी उपमान प्रस्तुत किये है वे सब बिलकुल अनूठे और अछूते हैं। परम्परा से सर्वथा भिन्न है, कवि बालिका के सौन्दर्य पर इतना केन्द्रित है कि उपमान के लिए इधर उधर न दौड कर उसी के अन्तर्गत वस्तुओ को या गुणो को ही प्रस्तुत या अप्रस्तुत रूप से कहता चला गया है। छायावाद-क्षेत्र की यह अद्भुत क्रान्ति है जो रीतिकालिक नखशिख-वर्णन से सर्वथा अलौकिक है।

१२—ये सब पंक्तियाँ सगीत-तत्त्वो से परिपूर्ण है। विषय भी यहाँ पर सुरीले अधरो का रसीला गान है, इसलिए मधुरिमामय वर्ण-विन्यास सोने मे सुहागा भर देता है। प्राय सब पंक्तियाँ "न" पर समाप्त होती हैं। म, न, त, स, र, च आदि कोमल वर्णों की रचना है, मानो बालिका के मिठ नवीन स्वर ही मानो बोल रहे हो। प्रथम

दो पंक्तियों का, 'सरलपन और निरालापन' का, फिर 'कान, अजान' का, 'सहज सजा सजीला' का, 'सुरीले ढीले' का, 'अधर और अधूरा' का, 'लचका, विकच और वचपन' का, 'पन और मन' का, 'दिपी-सी पी-सी' का, 'दिपी-सी' से लेकर तीन पंक्तियों तक की सी-सी की ध्वनि का, 'रंगीले गीले' का स्वाभाविक अनुप्रास कितनी मधुर ध्वनियों के संगीत की सृष्टि कर रहा है ?

२—उसके उस . था पाया—शब्दार्थ—कल=सुन्दर।

अवतरणिका—ऊपर की पंक्तियों मे कवि ने बालिका के शिशु-सौन्दर्य का वर्णन किया है। अब अग्रिम पंक्तियों मे यह बताया है कि उसका स्वयं पर क्या प्रतिक्रिया हुई और कैसे वह उसकी ओर आकृष्ट होता गया।

कवि कहता है कि मैंने उस बालिका के सरलपने से अपना हृदय सजाया था। उसकी सरलता और उसका भोलापन मेरे हृदय मे व्याप्त हो गया। मैंने भी उसको अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए मधुर-मधुर संगीतों से उसके हृदय को प्रोत्साहित किया था। उसको अपनी कल्पना की कल्पलता कहकर उसके साथ आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित किया था। कल्पना मे जो जैसा और जितना सौन्दर्य हो सकता था उतना और वैसा ही मैंने उस बालिका मे प्राप्त किया था। इसीलिए उसे अपनाया था। उसमे नवीन-नवीन भावनाओं का पराग भी प्राप्त किया था।

३—मैं मन्द हास-सा .. आया—मेरी और उसकी इतनी घनिष्ठता हो गई कि मैं उसके कोमल अधरों पर मँडराया, जिस प्रकार उसकी निजी मुसकान उसके अधरों पर मँडराती है। उसके मुख की सुन्दर सुगन्धि से मैं नित्यप्रति उसके अधिकाधिक निकट खिंचता चला आया।

१—कवि ने "मैं" मूर्त का उपमान अमूर्त हास रखा है।

२—"मँडराया, सुरभि से खिंच आया, पराग पाया" आदि प्रयोगों मे भँवर-फूल के रूपक की ओर भी संकेत हो रहा है। भ्रमर और पुष्प-वाटिका के पक्ष मे भी इन पंक्तियों का अर्थ स्पष्ट रूप मे व्यक्त हो रहा है।

७—"आँसू" की बालिका

अवतरणिका—यह कविता "आँसू" शीर्षक कविता का अंशमात्र है। "आँसू" मे वस्तुत कवि के हृदय के अविरल आँसू संचित है और इसमे कवि की अन्तर्वेदना मुखर हो गई है, इस अंश मे केवल बालिका के सौंदर्य-पारावार का चिन्तन करना कवि का लक्ष्य है। उच्छ्वास की जिस बालिका का वर्णन पूर्व कविता मे हुआ है, उसी से सम्बद्ध यह कविता भी समझनी चाहिए। कवि की कल्पनामयी उस मानवी मूर्ति बालिका के विधुर वियोग मे ही कवि के ये आँसू है।

१—एक वीणा आभार—शब्दार्थ—चितवन=चंचल दृष्टिपात। सुधामय=अमृतमय। उपचार=कष्ट निवृत्ति का उपाय या औषध। आभार=एहसान।

अधूरा और लचकीला कहा है। कवि की बालिका के स्वभाव के बालक प्राय देखे भी जाते है।

६—"पी-सी मुसकान" मे अमूर्त मुसकान के लिए मूर्त उपमान प्रिय लाया गया है और उस उपमान के बल से मुसकान का मानवीकरण भी हुआ है। दूसरी पक्ति मे मुसकान का उपमान सखी भी है यह भी मूर्त है और मानवी है। प्रथम उपमान प्रिय पुल्लिग है जो स्त्रीलिंग मुसकान के लिए अखरता भी नही है, क्योकि यहाँ मुसकान के साथ प्रिय की गोपनीयता ही केवल अभिप्रेत है। और फिर यथावसर लिङ्ग-विपर्यय करना कवि की स्वभावगत स्वच्छन्दता भी है।

७—"खिची" विशेषण का प्रयोग यहाँ श्लेष रूप मे किया गया है, मुसकान के पक्ष मे इसका अर्थ रेखा की भाँति खिची हुई मुसकान होगा और सखी के पक्ष मे मान की हुई और रूठी हुई या ऐंठी हुई होगा।

८—"मानगिरा धरती थी" मे गिरा (वाणी) का मानवीकरण है, क्योकि मान धारण करना मानव-व्यापार है। साथ ही सखी मूर्त मुसकान के साथ अनुनय और मान का अभिनय करने वाली दूसरी सहेली के रूप मे भी गिरा को प्रस्तुत किया गया है।

९—"रगीले गीले फूलो से अधखिले भावो से प्रमुदित" अमूर्त भावो के लिए मूर्त फूलो का उपमान-विधान किया गया है, रगीले, गीले और अधखिले ये तीनो विशेषण फूलो के भी होगे और भावो के भी। रगीले भाव और गीले भाव का तात्पर्य यह है कि बालिका के भाव बडे सुन्दर और चित्र विचित्र है साथ ही सरस भी है, परन्तु उनका पूर्ण विकास नही हुआ है, अत अस्फुट और अधखिले है जो बालिका की वय के अनुरूप ही है।

१०—"तरंग-सी" के उपमान द्वारा बालिका की चचलता, तरलता और कल-कल ध्वनि आदि भावो की अभिव्यक्ति हो रही है। यह भी ध्वनित हो रहा है कि उसमे इतनी मृदुलता, सुकुमारता और सरलता है कि तट या मर्यादा से बाहर होने की उसमे न सामर्थ्य है न चाह ही। अभी उसकी अवस्था खेलने-कूदने की है।

११—इन सब पक्तियो की एक विशिष्टता यह भी है कि कवि ने जितने भी उपमान प्रस्तुत किये है वे सब बिलकुल अनूठे और अछूते हैं। परम्परा से सर्वथा भिन्न है, कवि बालिका के सौन्दर्य पर इतना केन्द्रित है कि उपमान के लिए इधर उधर न दौड कर उसके अन्तर्गत वस्तुओ को या गुणो को ही प्रस्तुत या अप्रस्तुत रूप से कहता चला गया है। छायावाद-क्षेत्र की यह अद्भुत क्रान्ति है जो रीतिकालिक नखशिख-वर्णन से सर्वथा अलौकिक है।

१२—ये सब पक्तिया सगीत-तत्त्वो से परिपूर्ण है। विषय भी यहाँ पर सुरीले अधरो का ललकीला गान है, इसलिए सगीतमय वर्ण-विन्यास सोने मे सुहागा भर देता है। प्राय सब पक्तिया "न" पर समाप्त होती हैं। स, न, ल, म, र, च आदि कोमल वर्णों की भरमार है, बालिका के मित सगीत स्वर ही मानो बोल रहे हो। प्रथम

यहाँ भी कवि ने ससीम भौहो मे असीम आकाश का विधान किया है। इसी भाँति, शैशव-ससार, और प्रेम असीम है इनके आधार बालिका के ससीम उपादान हैं।

३—कपोलों ·· सांस—शब्दार्थ—कपोल=गाल। उर=हृदय। श्रवण=कान। सकेत=इशारे। दुराव=छिपाना। आवास=निवास। मुकुल=कलिका। भास=प्रकाश।

अवतरणिका—कवि इन पक्तियो मे प्रकृति के विविध अवयव और नाना भावो के दर्शन बालिका मे ही पुञ्जीभूत देख रहा है।

बालिका के कपोलो मे उसके हृदय के कोमल भाव अकित थे। हृदय की कोमल भावनाएँ उसके कपोलो मे स्पष्ट झलक पडती थी। कपोलों की कोमलता मानो हृदय के कोमल भावो की ठीक प्रतिबिम्ब थी। उसके कानो मे और आंखो मे प्रेम का बर्ताव विद्यमान था। मेरी सब बातो को वह ध्यान पूर्वक सुनती थी और देखा करती थी। उसकी दृष्टि से प्रतीत होता था कि वह सद्व्यवहार और मधुर बर्ताव रखती है। उसके सकेत बहुत सरल और सीधे हुआ करते थे और उनमे सकोच और लज्जा का मिश्रण रहता था। उसके कोमल होठो की मुद्रा मे प्रतीत होता था कि वह लज्जा मे छिपना चाहती हैं और वे दुरावभरे होठ मुझे बडे मधुर प्रतीत होते थे।

उसके हृदय मे उषाकाल का निवास था। उषाकाल की भाति जागृति, प्रफुल्लता, स्फूर्ति, माधुर्य आदि से भरा हुआ उसका हृदय था। प्रभातकाल मे जैसे कलियाँ बडी मृदुता से विकसित होती है वैसे ही उसका मुख भी विकासोन्मुख था। उसका स्वभाव ऐसा स्वच्छ, शीतल और आनन्दप्रद था जैसे चांदनी की छटा हो। उसके विचार अभी अपरिपुष्ट थे, उनमे प्रौढता नही आयी थी। अत वे बच्चों के साँस की भाति थे जो बहुत ढीले, हल्के और सरल होते है।

१—यहाँ पर कवि स्थूल और भौतिक वर्णन से बिलकुल दूर है। उसका विचार-केन्द्र केवल बालिका का अन्त सौन्दर्य है। रीतिकालीन कवियो के नखशिख वर्णन और पन्तजी के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अन्त सौन्दर्य के वर्णन मे आकाश पाताल का अन्तर स्पष्ट है। यहाँ पर भी सादृश्य मूलक अप्रस्तुत सभी भावात्मक और अमूर्त हैं।

४—बिन्दु · · पुनीति—शब्दार्थ—सिन्धु=समुद्र। अनन्त=अन्तहीन। अखिल=सम्पूर्ण। पुनीत=पवित्र। धरा=पृथ्वी।

अवतरणिका—इन पक्तियो मे कवि विश्व के समस्त सौन्दर्य को बालिका मे केन्द्रीभूत कर देता है। विश्व का सीमाहीन सौन्दर्य-सागर एक बालिका मे पुञ्जीभूत दिखाना कवि का उद्देश्य है।

तुम एक बून्द मे सीमाहीन समुद्र थी। विश्व का समस्त सौन्दर्य-पारावार यदि एक बिन्दु का रूप धारण कर ले तो वह तुम्हारा ही आकार बन सकता था। विश्व के समस्त सगीत-शास्त्र के विस्तार ने मानो एक स्वर का स्वरूप धारण किया हो और वही स्वर तुम्हारा स्वरुप था। यदि सम्पूर्ण अनन्त ऋतु एक ही कलिका मे

कवि अपनी स्मृतिगत बालिका को प्रत्यक्ष रूप मे सम्बोधन करते हुये कहता है कि तुम्हारा सौन्दर्य केवल अनुभूतिगम्य और सूक्ष्म है। तुम्हारी सुन्दरता वीणा की कोमल झकार की भाँति है जिसकी मृदुता, माधुर्य और आकर्षण का अनुभव ही हो सकता है। तुम्हारी सुन्दरता की कोई सीमा ही नही है। हे सुकुमार! तुझे कैसे विश्वास दिलाऊँ कि तुम इतनी सुन्दर हो। तुम्हारे उस अनुभूतिमय सौन्दर्य का स्थूल आकार किस दर्पण मे तुम्हे दिखाऊँ।

तुम्हारे स्पर्श मे एक प्राणो की नव चेतना थी। जब मैं तुम्हारी सगति मे रहता था तो वह मुझे इतनी पवित्र और शान्तिप्रद प्रतीत होती थी मानो मैं गगा-स्नान कर रहा हूँ। जब तुम बोलती थी, हे कल्याणि! तुम्हारी वाणी मे वही पवित्रता, वही निर्मलता और वही धारा प्रवाहित होती थी, जैसी त्रिवेणी के सगम की कल कल सगीत-लहरी।

मै विश्व की समस्त छवि तुम मे देखा करता था। तुम्हारी अलौकिक चितवन मे मै भगवान की छवि के दर्शन करता था। तुम्हारी साँसो का स्पर्श मेरी चिन्ता और आधिव्याधि को दूर कर देता था, मानो वह मेरे लिए अमृतमयी औषधि हो। तुम्हारी छाया मेरे लिए आधार बन गई थी, मैं तुम्हारी सुखद-छाया मे असीम परितृप्ति का अनुभव किया करता था। तुम्हारी चेष्टाएँ और तुम्हारे हावभाव मुझे बहुत सुख-प्रद लगते थे और मैं उनके प्रति अपने को आभारी अनुभव करता था। तुम्हारी चेष्टाएँ मुझे सुख और आनन्द देकर मुझ पर अहसान किया करती थी।

१—प्रथम चार पक्तियो मे कवि ने जो प्रस्तावना की है कि बालिका का सौंदर्य सूक्ष्मातिसूक्ष्म और भावगम्य है उसी को अन्त तक कवि ने विस्तृत किया है। उसके भावमय सौन्दर्य के लिए भावात्मक सादृश्यो का ही उपादान कवि ने चुना है। वस्तुत बालिका का सौन्दर्य चक्षुर्गोचर नही है, उसकी न छाया हो सकती है न प्रतिबिम्ब। प्राण-सचार, गगा-स्नान, लहरो का गान, उपचार, आधार और आभार इनमे किसी का भी साकार चित्र प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है, ये सब निराकार और भावमय है।

यहाँ भी कवि ने ससीम भौहों में असीम आकाश का विधान किया है। इसी भाँति, शैशव-संसार, और प्रेम असीम है इनके आधार बालिका के ससीम उपादान हैं।

३—कपोलों · साँस—शब्दार्थ—कपोल=गाल। उर=हृदय। श्रवण=कान। संकेत=इशारे। दुराव=छिपाना। आवास=निवास। मुकुल=कलिका। भास=प्रकाश।

अवतरणिका—कवि इन पंक्तियों में प्रकृति के विविध अवयव और नाना भावों के दर्शन बालिका में ही पुञ्जीभूत देख रहा है।

बालिका के कपोलों में उसके हृदय के कोमल भाव अंकित थे। हृदय की कोमल भावनाएँ उसके कपोलों में स्पष्ट झलक पड़ती थीं। कपोलों की कोमलता मानो हृदय के कोमल भावों की ठीक प्रतिबिम्ब थी। उसके कानों में और आँखों में प्रेम का बर्ताव विद्यमान था। मेरी सब बातों को वह ध्यान पूर्वक सुनती थी और देखा करती थी। उसकी दृष्टि से प्रतीत होता था कि वह सद्व्यवहार और मधुर बर्ताव रखती है। उसके संकेत बहुत सरल और सीधे हुआ करते थे और उनमें संकोच और लज्जा का मिश्रण रहता था। उसके कोमल होठों की मुद्रा से प्रतीत होता था कि वह लज्जा में छिपना चाहती है और वे दुरावभरे होंठ मुझे बड़े मधुर प्रतीत होते थे।

उसके हृदय में उषाकाल का निवास था। उषाकाल की भाँति जागृति, प्रफुल्लता, स्फूर्ति, माधुर्य आदि से भरा हुआ उसका हृदय था। प्रभातकाल में जैसे कलियाँ बड़ी मृदुता से विकसित होती हैं वैसे ही उसका मुख भी विकासोन्मुख था। उसका स्वभाव ऐसा स्वच्छ, शीतल और आनन्दप्रद था जैसे चाँदनी की छटा हो। उसके विचार अभी अपरिपुष्ट थे, उनमें प्रौढ़ता नहीं आयी थी। अतः वे बच्चों के साँस की भाँति थे जो बहुत ढीले, हल्के और सरल होते हैं।

१—यहाँ पर कवि स्थूल और भौतिक वर्णन से बिलकुल दूर है। उसका विचार-केन्द्र केवल बालिका का अन्तः सौन्दर्य है। रीतिकालीन कवियों के नखशिख वर्णन और पन्तजी के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अन्तः सौन्दर्य के वर्णन में आकाश पाताल का अन्तर स्पष्ट है। यहाँ पर भी सादृश्य मूलक अप्रस्तुत सभी भावात्मक और अमूर्त हैं।

४—बिन्दु · पुनीत—शब्दार्थ—सिन्धु=समुद्र। अनन्त=अन्तहीन। अखिल=सम्पूर्ण। पुनीत=पवित्र। धरा=पृथ्वी।

अवतरणिका—इन पंक्तियों में कवि विश्व के समस्त सौन्दर्य को बालिका में केन्द्रीभूत कर देता है। विश्व का सीमाहीन सौन्दर्य-सागर एक बालिका में पुञ्जीभूत दिखाना कवि का उद्देश्य है।

तुम एक बूंद में सीमाहीन समुद्र थी। विश्व का समस्त सौन्दर्य-पारावार यदि एक बिन्दु का रूप धारण कर ले तो वह तुम्हारा ही आकार बन सकता था। विश्व के समस्त संगीत-शास्त्र के विस्तार ने मानो एक स्वर का स्वरूप धारण किया हो और वही स्वर तुम्हारा स्वरूप था। यदि सम्पूर्ण अनन्त ज्ञान एक ही कलिका में

१—"धुआँ" मे रूपकातिशयोक्ति या साध्यवसाना लक्षणा है। क्योंकि उपमेयभूत कुहरे का सर्वथा लोप है।

२—"धँस गये धरा मे सभयशाल" मे हेतूत्प्रेक्षा और फलोत्प्रेक्षा दोनो है। क्योंकि धँसने का हेतु यहाँ "सभय" है। प्रच्छन्न हो जाने के अर्थ मे धरा मे धँसना लाक्षणिक प्रयोग है जो उत्प्रेक्षा मूलक है।

६—वह सरला मित्र थी—शब्दार्थ—चितेरा=भावुक। वाह्य=बाहरी। चमत्कृत=चमत्कारपूर्ण। सुधि-सी=स्मृति की भाँति। मनोरम=सुन्दर।

उस वर्षा ऋतु के वातावरण मे कवि को उस बालिका की स्मृति आती है और वह कहता है कि वह सरल स्वभाव की बालिका उस पर्वत को बादल-घर कहा करती थी क्योंकि उस पर्वत के पीछे ही से बादल आकाश की ओर उमडा करते थे।

कवि कहता है कि विश्व की बाहरी प्रकृति मेरे लिए इस भाँति चमत्कारपूर्ण बन जाती थी, क्योकि प्रकृति के उपादान और उनके व्यापारो के साथ उस बालिका की स्मृति का सम्बन्ध मेरे हृदय मे बना रहता था। अपने शैशव काल की मैं याद करता हूँ तो वह याद मुझे बडी भोली भाली लगती है और एक अपूर्व आनन्द दिया करती है। बचपन की उस स्मृति की भाँति वह बालिका भी बहुत सरल और सुन्दर थी जो शैशव मे मेरी सुन्दर मित्र थी और मेरे आकर्षण का केन्द्र थी।

१—मूर्त बालिका के लिए अमूर्त स्मृति का उपमान रूप मे विधान किया गया है। भाव यह है कि वाह्य प्रकृति को भी उसकी स्मृति अधिक आकर्षक बनाती है और अन्त प्रकृति के कोने-कोने मे तो वह व्याप्त है ही। कवि के बाहर और भीतर बालिका की सत्ता निरन्तर विद्यमान रहती है। वियोग-अवस्था की यह मनोवैज्ञानिक स्थिति है।

२—रीति कालीन कवियों की भाँति कवि विरह वर्णन मे प्रकृति को गौण नही कर रहा है। प्रकृति की प्रधानता के साथ-साथ विरह्वर्णन है। प्रकृति प्रधान है और बालिका की स्मृति का उदय उसका अद्भुत

१—विरह है ... अवसान है—शब्दार्थ—कसकती वेदना=टीस मारती हुई पीडा। अवसान=समाप्ति।

कवि कहता है कि यह विरह है या मेरे जीवन मे एक वरदान है। मेरी कल्पना तो कसकती हुई पीडा से भरी हुई है और आसुओं मे जीता जागता और सिसकी भरता हुआ सगीत है। विरह मे निकलने वाली शून्य आहे मधुर-मधुर छन्दो का स्वरूप धारण कर लेती हैं। सवेदनामय मधुर सगीत की निरन्तरता का कही अन्त ही नही होने पाता है। मेरा यह मधुर सगीत अबाध गति से निरन्तर चलता रहता है।

मेरी कल्पना मे मेरी भावना की मूर्ति समाई हुई है। उसी की करुणा मेरी कल्पना में सनी हुई है। हृदय मे करुणा, सुन्दर छन्द और सगीत ये तीनो उपादान विद्यमान हैं तो मधुर लय का अन्त कैसे हो सकता है।

१—विरह को 'वरदान' बताना कवि की तीव्र और गहरी अनुभूति का द्योतक है। प्रेमी को सबसे अधिक सुख और उसके जीवन का सबसे बडा वरदान यही होता है कि वह सदा अपनी प्रेयसी के साथ रहा करे। यहाँ भले ही कवि विरही है, परन्तु उसके विरह की इतनी पराकाष्ठा हो गई है कि वह समस्त जगत् मे और अपनी कल्पना मे अपनी प्रेयसी के दर्शन करता ही रहता है, सदा उसके साथ रहता है, यह वह दशा है जब प्रेमी—

"विरहीव विभो प्रियामय परिपश्यामि सवन्मय जगत्"

सम्पूर्ण जगत् को प्रियामय देखा करता है और स्थूल शारीरिक मिलन से बहुत ऊँचा उठकर व्यापक प्रेम का अनुभव करता है। ऐसी ही दशा कवि की है तो वह क्यो न विरह को वरदान समझे ? यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि बिना विरह के प्रेम मे पूर्णता और परिपक्वता नही आ पाती है और प्रेम एकागी रह जाता है। वस्तुत दुख और वेदना की अवस्था ही मानव-जीवन को अधिक सहानुभूतिमय और गम्भीर बनाती है। मानव तब वैयक्तिकता के पर्दे को तोड कर विस्तार और व्यापकता की ओर उन्मुख हो जाता है। उसके दुख सुख जगत् और प्रकृति के दुख सुख हो जाते हैं तथा जगत् के दुख सुख उसके अपने।

२—वियोगी ... अनजान—कविता के लिए भावुकता, सहानुभूति, सगीत और कल्पना आदि तत्व अपेक्षित होते है। ये सब तत्व वियोग दशा मे ही मानव के अन्दर विकसित होते है, अत कवि कहता है कि पहिला कवि अवश्य वियोगी रहा होगा। उसकी आह से वेदनामय मर्मस्पर्शी सगीत उपजा होगा। उसकी आँखो से सम्वेदना के आसू चुपचाप वह चले होगे और उन्हीं आँसुओ का सगीतमय स्वरूप कविता के रूप मे व्यक्त हुआ होगा।

१—यहाँ कवि का सकेत आदि कवि महर्षि वाल्मीकि की ओर है। । महर्षि वाल्मीकि ने देखा था कि किसी व्याध ने स्वच्छन्द विहार करते हुए क्रौञ्च पक्षी के जोडे मे से क्रौञ्च को आहत कर दिया है और बेचारी क्रौञ्ची गुहार मारती विलख-

१—"धुआँ" मे रूपकातिशयोक्ति या साध्यवसाना लक्षणा है। क्योकि उपमेयभूत कुहरे का सर्वथा लोप है।

२—"धँस गये धरा मे सभय शाल" मे हेतूत्प्रेक्षा और फलोत्प्रेक्षा दोनो है। क्योकि धँसने का हेतु यहाँ "सभय" है। प्रच्छन्न हो जाने के अर्थ मे धरा मे धँसना लाक्षणिक प्रयोग है जो उत्प्रेक्षा मूलक है।

६—वह सरला .... मित्र थी—शब्दार्थ—चितेरा=भावुक। वाह्य=बाहरी। चमत्कृत=चमत्कारपूर्ण। सुधि-सी=स्मृति की भाँति। मनोरम=सुन्दर।

उस वर्षा ऋतु के वातावरण मे कवि को उस बालिका की स्मृति आती है और वह कहता है कि वह सरल स्वभाव की बालिका उस पर्वत को बादल-घर कहा करती थी, क्योकि उस पर्वत के पीछे ही से बादल आकाश की ओर उमडा करते थे।

कवि कहता है कि विश्व की बाहरी प्रकृति मेरे लिए इस भाँति चमत्कारपूर्ण बन जाती थी, क्योकि प्रकृति के उपादान और उनके व्यापारो के साथ उस बालिका की स्मृति का सम्बन्ध मेरे हृदय में बना रहता था। अपने शैशव काल को मैं याद करता हूँ तो वह याद मुझे बडी भोली भाली लगती है और एक अपूर्व आनन्द दिया करती है। बचपन की उस स्मृति की भाँति वह बालिका भी बहुत सरल और सुखद थी जो शैशव मे मेरी सुन्दर मित्र थी और मेरे आकर्षण का केन्द्र थी।

१—मूर्त बालिका के लिए अमूर्त स्मृति का उपमान रूप मे विधान किया गया है। भाव यह है कि बाह्य प्रकृति को भी उसकी स्मृति अधिक आकर्षक बनाती है और अन्त प्रकृति के कोने-कोने मे तो वह व्याप्त है ही। कवि के बाहर और भीतर बालिका की सत्ता निरन्तर विद्यमान रहती है। वियोग-अवस्था की यह मनोवैज्ञानिक स्थिति है।

२—रीति कालीन कवियो की भाँति कवि विरह वर्णन मे प्रकृति को गौण नही कर रहा है। प्रकृति की प्रधानता के साथ-साथ विरहवर्णन है। प्रकृति प्रधान है और बालिका की स्मृति का उदय उसका अङ्गभूत

९—आँसू

अवतरणिका— यह कविता भी "आँसू की बालिका" और "उच्छ्वास की बालिका" से सम्बद्ध है। वह बालिका कवि के जीवन के कण-कण मे समा चुकी थी। परन्तु दुर्दैव उन दोनो का मिलन न देख सका। पूर्व कविताओ मे कवि बालिका की स्मृति रूप सम्बल मे आश्वासन प्राप्त करता है। इस कविता मे बताया गया है कि वह वियोग का इतना अभ्यस्त हो गया है कि वह अपने दुःख को दुःख नहीं समझता है। वियोग की विधुरता उसके जीवन का अङ्ग बन गई है और उसे उसने आत्मसात् कर लिया है। इसीलिए वह वियोग को अपनेजीवन का वरदान समझता है। उसमे ही सुख की अनुभूति प्राप्त करता है।

१—विरह है ... अवसान है—शब्दार्थ—कसकती वेदना=टीस मारती हुई पीडा। अवसान=समाप्ति।

कवि कहता है कि यह विरह है या मेरे जीवन मे एक वरदान है। मेरी कल्पना तो कसकती हुई पीडा से भरी हुई है और आसुओं से जीता जागता और सिसकी भरता हुआ सगीत है। विरह मे निकलने वाली शून्य आहे मधुर-मधुर छन्दो का स्वरूप धारण कर लेती है। सवेदनामय मधुर सगीत की निरन्तरता का कही अन्त ही नही होने पाता है। मेरा यह मधुर सगीत अबाध गति से निरन्तर चलता रहता है।

मेरी कल्पना मे मेरी साधना की मूर्ति समाई हुई है। उसी की करुणा मेरी कल्पना में सनी हुई है। हृदय मे करुणा, सुन्दर छन्द और सगीत ये तीनो उपादान विद्यमान हैं तो मधुर लय का अन्त कैसे हो सकता है।

१—विरह को 'वरदान' बताना कवि की तीव्र और गहरी अनुभूति का द्योतक है। प्रेमी को सबसे अधिक सुख और उसके जीवन का सबसे बडा वरदान यही होता है कि वह सदा अपनी प्रेयसी के साथ रहा करे। यहाँ भले ही कवि विरही है, परन्तु उसके विरह की इतनी पराकाष्ठा हो गई है कि वह समस्त जगत् मे और अपनी कल्पना मे अपनी प्रेयसी के दर्शन करता ही रहता है, सदा उसके साथ रहता है, यह वह दशा है जब प्रेमी—

"विरहीव विभो प्रियामय परिपश्यामि भवन्मय जगत्"

सम्पूर्ण जगत् को प्रियामय देखा करता है और स्थूल शारीरिक मिलन से बहुत ऊँचा उठकर व्यापक प्रेम का अनुभव करता है। ऐसी ही दशा कवि की है तो वह क्यो न विरह को वरदान समझे? यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि बिना विरह के प्रेम मे पूर्णता और परिपक्वता नही आ पाती है और प्रेम एकागी रह जाता है। वस्तुत दुख और वेदना की अवस्था ही मानव-जीवन को अधिक सहानुभूतिमय और गम्भीर बनाती है। मानव तब वैयक्तिकता के पर्दे को तोड कर विस्तार और व्यापकता की ओर उन्मुख हो जाता है। उसके दुख सुख जगत् और प्रकृति के दुख सुख हो जाते हैं तथा जगत् के दुख सुख उसके अपने।

२—वियोगी ... अनजान—कविता के लिए भावुकता, सहानुभूति, सगीत और कल्पना आदि तत्व अपेक्षित होते हैं। ये सब तत्व वियोग दशा मे ही मानव के अन्दर विकसित होते हैं, अत कवि कहता है कि पहिला कवि अवश्य वियोगी रहा होगा। उसकी आह मे वेदनामय मर्मस्पर्शी सगीत उपजा होगा। उसकी आंखो से सम्वेदना के आसू चुपचाप बह चले होगे और उन्हीं आंसुओ का सगीतमय स्वरूप कविता के रूप मे व्यक्त हुआ होगा।

१—यहाँ कवि का सकेत आदि कवि महर्षि वाल्मीकि की ओर है।। महर्षि वाल्मीकि ने देखा था कि किसी व्याध ने स्वच्छन्द विहार करते हुए क्रौञ्च पक्षी के जोडे मे से क्रौञ्च को आहत कर दिया है और बेचारी क्रौञ्ची गुहार मारती विलख-

विलख कर विरह व्याकुल हो रही है। क्रौञ्ची की विरह-वेदना आदिकवि की अप
वेदना बन गई। उनका सम्वेदनात्मक हृदय उमड पडा और एकाएक "मा निष
प्रतिष्ठां त्वमगम. शाश्वती समा" का व्याकुल सगीत उनकी वाणी से फूट पड
यही श्लोक विश्व-कविता का प्रथम छन्द है। तत्पश्चात् रामचरित की करुणामयी ग
की धारा उनकी वाणी से बहने लगी जो वेदना के असीम सागर मे विलीन हो गई

३—हाय . हार—कवि का जीवन एकाकी है। वह अनुभव कर रहा है कि उस
जीवन मे अब अपना कोई नही। कोई उससे सहानुभूति प्रदर्शन करने वाला नह
है। तीनो लोको की श्री सम्पदा भी उसके अभावमय हृदय को सन्तोष नही
सकती। अत वह दुखी है और कहता है कि मैं किसके हृदय मे अपने हृदय व
भार उतारूँ? इस विश्व-जीवन मे अब मेरा कौन इतना निकट रहा है जिसव
सामने मैं अपने हृदय के दुख को कहूँ, सहानुभूति और आश्वासन प्राप्त करूँ तथ
दुख का भार उतार कर अपने हृदय को हलका करूँ।

दुखी व्यक्ति का हृदय तभी हलका होता है जब वह अपने सारे दुखो को किस
आत्मीय व्यक्ति के सम्मुख प्रकट कर दे और उससे कुछ आश्वासन प्राप्त कर ले
कवि को अब जगत् मे ऐसा आत्मीय नही दिखाई पड रहा है। अत वह कहता ह
कि अब मैं आसुओ के मोतियो का हार गूंथ कर किसे उपहार दूं। मेरे आसुओ क
उपहार स्वरूप समझ कर अपनाने वाला अब कौन है, मैं किसके सम्मुख रोकर अपन
जी हलका करूँ।

४—मेरा नयन—शब्दार्थ—मानस=मानसरोवर।

मेरा जीवन वर्षा ऋतु की तरह हो रहा है। मेरा मन वर्षा ऋतु मे मानसरोवर
की भाति उमड रहा है। जैसे वर्षा ऋतु मे मान सरोवर का जल उमड कर किनारो
से ऊपर तक बहने लगता है उसी प्रकार मेरे हृदय का दुख उमड कर बाहर की
ओर आ रहा है। जिस भाति आकाश मे गाढे काले, सफेद धूसर रङ्ग के बादल भर
जाते हैं वैसे ही मेरी आँखे आँसुओ से डबडबाई रहती है।

१—जीवन का सादृश्य वर्षा ऋतु मे करते हुए कवि ने असीम का ससीम मे
दर्शन किया है। आकाश जैसी व्यापक वस्तु का सादृश्य आँखो से दिखाया गया है।
इस प्रकार की उपमान-कल्पना, 'पन्तजी' की बहुत स्थानो पर है। जैसे—

"तुम्हारी आँखो का नीलाकाश!
खो गया मेरा खग अनजान, मृगेक्षणि!"

२—विरहावस्था मे वर्षा ऋतु का वातावरण बहुत अधिक व्ययाप्रद होता है।
आदिकवि वाल्मीकि से अब तक के साहित्यकार इनका वर्णन करते आये हैं। कवि-
वर कालिदास के मेघदूत की सर्जना का आधार ही मेघ-दर्शन है। इस प्रकार
विरह-वर्णन मे वर्षा का प्रसग परम्परागत होने पर भी इस कविता मे पन्तजी की
अपनी अलग विशेषता है।

५—कभी उर मे असहाय—शब्दार्थ—अगणित=असंख्य। विहग=पक्षी।

कभी मेरे हृदय मे असंख्य कोमल भावनाएँ उदित होती है, मानो वे वर्षा काल मे कूजन करने वाले पक्षियो का समूह हो। विरह-व्यथा के पुराने घाव फिर खुल कर ऐसे ताजे हो जाते हैं जैसे वर्षा मे लाल-लाल कलियाँ स्वय विकसित हो जाती है।

१—घाव का उपमान कलियाँ है जो स्त्रीलिङ्ग है और क्रिया "खुल पडते हैं" पुल्लिङ्ग है जो कलियो के साथ अन्वित नही हो पाती है। इस प्रकार की स्वच्छन्दता भी छायावादी स्वच्छन्दता है।

६—इन्द्रधनु चारों ओर—शब्दार्थ—सेतु=पुल। अनिल=हवा। अछोर=अनन्त। धूमिल=धुन्धला। भावी=भविष्य।

जैसे वर्षा काल मे इन्द्र-धनुष आकाश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक निराधार अटका रहता है और आरपार पुल सा बाँध देता है उसी भाँति कभी मेरे जीवन मे आशा का उदय होने लगता है जो हवा मे अटकी रहती है, निराधार होती है। कभी मेरे जीवन मे निराधार हवाई सतरगी आशाये दिखाई पडती हैं जो इन्द्र धनुष की भांति क्षणिक होती हैं। भविष्य उज्ज्वल प्रतीत होता है। परन्तु कभी एकाएक काला, धूसर एव भयकर कुहरा मेरे जीवन के वर्षाकाश मे छा जाता है जो मेरे भविष्य को अन्धकारमय कर देता है। कभी मैं जीवन से निराश होता हूँ और कभी कोरी कल्पना मे सुख का क्षणिक अनुभव करता हूँ।

१—"अनिल मे अटका" इस विशेषण से एक तो इन्द्र धनुष की अत्यन्त क्षणिकता का भास होता है और दूसरे यह अभिव्यक्त होता है कि उसकी स्थिति भी हवा पर अवलम्बित है। हवा ही उसे बना और मिटा भी देती है। उधर इसका उपमेय आशा के सेतु मे भी यही व्यग्य है कि आशा यद्यपि रगीन और अछोर है परन्तु वह बहुत हल्की और कोमल है। हवा की सी हल्की ठेस उसे मिटा सकती है।

२—"भावी" स्त्रीलिंग का उपमान पुल्लिंग कुहरा "दिखती" स्त्रीलिंग क्रिया के साथ ठीक नही जँचता, पर छायावादी कवि का स्वातन्त्र्य क्षम्य है।

७—तडित-सा निदान—शब्दार्थ—तडित=बिजली। प्रभा=प्रकाश। गूढ=छिपा हुआ।

कवि कहता है कि ऐसे जीवन के अन्धकार मे, हे सुमुखि मुझे तुम्हारा स्मरण आ जाता है जो बिजली की चमक की भाँति होता है। तुम्हारी मुखाकृति का ध्यान आते ही मेरे पलक बन्द हो जाते हैं और तुम्हारी छविमयी मूर्ति मेरे हृदय मे समा जाती है जैसे मेघ के हृदय मे पलक मारती हुई बिजली उसका हृदय चीर कर उसी के अन्दर प्रविष्ट हो जाती है। बिजली कौंधने के क्षण भर पश्चात् ही जैसे मेघ गम्भीर गर्जना करता है और आकाश अधीर-सा हो जाता है उसी भाँति मेरे हृदय मे तुम्हारा स्मरण अनेक रहस्यमय प्रसगों की याद भी दिलाता है और हृदय अधीर

१५—द्विरद . . गजवर—शब्दार्थ—द्विरद दन्त=हाथी के दाँत। कर सीकर=सूड से छोडा हुआ फव्वारा। भूति=वैभव या कीर्ति। कटि=कमर परिकर=कमरबन्द वस्त्र। गिरि=पर्वत। गजवर=विशाल हाथी।

वे बादल कभी ऊपर उठते हुये हाथी के दाँतो के समान शुभ्रवर्ण के प्रती होते थे। और फिर उनका आकार ऐसा होता जाता था मानो हाथी सूड से ज का फव्वारा छोड रहा हो। कभी वे खण्ड-खण्ड होकर विखर जाते थे। लगता थ कि किसी का धवल यश चारो ओर फैला हुआ हो। कभी उनका आकार हाथी क कमर पर बाँधने वाले धवल वस्त्र की भाँति हो जाता था इस प्रकार पर्वत पर नान प्रकार के आकार बदलने वाले बादल उस पर्वत को विशाल हाथी का रूप दे देते थे

१६—इन्द्रधनु . . मेघासार—शब्दार्थ—चपला=विजली। विशिख=वाण द्रुत=शीघ्र।

कभी पर्वत के उस पार हलकी बिजली चमक पडती थी। फिर वर्षा क बौछार आने लगती थी, जिसको हवा का झोका झट से उडाकर रोक देता था प्रतीत ऐसा होता था कि बिजली के नन्हें-नन्हें बच्चे इन्द्र धनुष की टकार से भय भीत होकर पर्वत के उस पार छिपने को उचकते हुए दौडते हो और उसी के पश्चात् वर्षा की धार रूपी वाणो की बौछार होते देखकर पवन रूपी सरक्षक उ बच्चो को पुचकार देता था कि डरो मत। फिर वह उस बाण-वर्षा को रोक देता था

१—यहाँ पर बिजली के हल्के-हल्के प्रकाश का मानवीकरण किया गया है और पवन का भी मानवीकरण है। चित्र ऐसा उपस्थित होता है कि चमकीले हिरण के चञ्चल बालक पर्वत पर स्वच्छन्द क्रीडा कर रहे हैं। मेघ रूपी व्याधा उनके शिकार के लिए ज्यो ही धनुष की टकार करता है त्योही वे बच्चे डर के मारे उचक कर पर्वत के पीछे छिपने को भाग जाते हैं। उन बच्चो की अचानक भाग दौड देखकर पवन सरक्षक के रूप मे उनको पुचकार रहा है। परन्तु व्याध-मेघ उनकी ओर वाणो की वृष्टि कर देता है, परन्तु बच्चो का सरक्षक वाण-वृष्टि को रोक देता है।

२—यहाँ भयानक और वात्सल्य का मिश्रण है।

१७—अचल के . . ..अम्बर—शब्दार्थ—अचल=पर्वत। अवनि=पृथ्वी। व्यापकता=विस्तार। अविकार=स्वय। सत्वर=शीघ्र। विहगम=पक्षी। अम्बर=(१) आकाश (२) वस्त्र।

वे बादल पर्वत से उठकर आकाश मे उड जाते थे। और शीघ्र सारे आकाश मे खण्ड-खण्ड करके व्याप्त हो जाते थे। फिर कुछ काल पश्चात् विस्तृत आकाश मे लीन हो जाते थे। पर्वत के ऊपर का आकाश रिक्त होकर नीला हो जाता था। प्रतीत ऐसा होता था कि बादल मानो पर्वत के विचार हो और वे उसके हृदय से उठकर शून्य मे विलीन हो जाते हो। रिक्त आकाश ऐसा लगता था, मानो पर्वत के शिखर पर एक पक्षी बैठा हुआ हो।

१—पर्वत का यहां मानवीकरण हुआ है क्योंकि विचारो का सम्बन्ध मानव से ही होता है।

२—चित्र उपस्थित होता है कि कोई व्यक्ति विचार मग्न बैठा है और उसके सिर पर नीला वस्त्र (पगडी) सुशोभित है। उस पगडी का आकार किसी पक्षी-का सा है।

१८—पपीहो प्रश्नोत्तर—शब्दार्थ—पीन=ऊँची। दादुर=मेढक। नग-पावस=पर्वत और वर्षाऋतु।

पर्वत प्रदेश का वर्षाकालिक वातावरण बहुत शब्दमय हुआ करता है। उसका चित्रण कवि यहां पर कर रहा है। पपीहो की ऊँची-ऊँची पुकार सुनाई पडती हैं। झरनो के बहने का झर झर-शब्द निरन्तर चलता रहता है। बीच-बीच मे झींगुरो की झीनी-झीनी झकार भी लगी रहती है। उधर आकाश मे मेघो का बडा भारी गम्भीर गर्जन सुनाई पडता है। मेढको के सम्मिलित स्वरो का प्रवाह भी निरन्तर जारी रहता है। वर्षा काल की ये सभी ध्वनियां सम्मिलित होकर एक अपूर्व ध्वनि-मय वातावरण प्रस्तुत कर देती हैं जो हृदय को हरण कर लेती हैं। कवि कल्पना करता है कि ये सब शब्द पर्वत और वर्षा ऋतु के बीच होने वाले वार्तालाप के प्रश्नोत्तर हैं।

१—ये पक्तियां ध्वन्यर्थक भाषा-शैली की सुन्दर उदाहरण है। वर्ण-ध्वनियो के द्वारा अर्थ की पूर्ण प्रतीत करा देने की कला मे पन्तजी बडे निपुण है। जैसे झर-झर, झीनी झनकार, घहर, छनकार ये सभी शब्द उन वस्तुओ की ध्वनियो की स्पष्ट प्रतीति करा देते है।

२—"पीन' का मूल अर्थ मोटा स्थूल या मासल है जो स्थूल पदार्थों के लिए। विशेषण रूप मे आया करता है। जैसे "पीन पयोधर' इसमे स्थूल वस्तु की गुरुता का बोध होता है। यहां पर पुकार के लिए इस विशेषण का प्रयोग किया गया है। पुकार एक भाव या व्यापार है जो अमूर्त है। अत पीन शब्द का लाक्षणिक अर्थ ऊँचा या तीव्रतर होगा। क्योंकि पुकार की पीनता अतिशय तीव्रता या ऊँचाई ही हो सकती है।

३—"झीनी झनकार" मे झीनी विशेषण देकर वस्तुत कवि ने झींगुरो के शब्दो का साक्षात् स्थूल चित्र खीच दिया है। निराकार झनकार को साकार बना कर खडा कर दिया है। झीना शब्द का मूल अर्थ छननी जैसी छिद्रमय वस्तु है। जैसे झीनी चादर। घना और सघन का विरोध वाचक यह विशेष पद है। अरण्य-प्रान्त मे झींगुरो की ध्वनि सुनने वाले जानते होंगे कि उनकी ध्वनि जारी तो लगा-तार रहती है परन्तु क्षण-क्षण मे द्रुत-गति से विश्राम लेती हुई सुनाई पडती है। तरग की भाति उसमे कम्पन होता रहता है, बस ठीक इसी प्रकार जैसे सायकिल की घण्टी की तरगमयी आवाज होती है। मध्य-मध्य मे प्रतीत होने वाले इस सूक्ष्म

उसके चले जाने के पश्चात् से कवि खोया-खोया सा रहने लग जा और उधर बालिका की दशा मे भी परिवर्तन आ जाता है। वह कवि के प्रति लजीली और सकोचशील दिखाई पडने लगती है। उमकी दशा देखकर उसकी स उसको और अधिक परेशान करने लग जाती हैं। कवि सदा उसी के ध्यान मे रहने लग जाता है, कवि विश्वास करने लगता है उन दोनो का पारस्परिक मिलन बहुत सुखी रहेगा क्योकि दोनो मातृ-पितृ-स्नेह से वचित थे और स्ने भूखे थे।

विधाता की गति कुछ और है। कवि के देखने से उस बालिका की ग्रन्थि । अन्य युवक के साथ बँध जाती है। कवि विवश था। कोई उपाय न कर सकता वह रात्रि उसने किसी निर्जन स्थान मे रो-रोकर व्यतीत की। तब से कवि । जल के भँवर से बचकर सदा के लिए विरह के आवर्त मे लीन हो जाता है।

इस काव्य के कथानक मे नूतनता यह है कि प्रेमिका की ओर से सर्वः प्रणय का पग उठाया गया है जो अब तक की प्रेम कथाओ से सर्वथा नूतन ल है। अब तक की प्रेम-कथाओ मे पुरुष की ओर से प्रणय-व्यापार का आरम्भ दिर जाता है। पर यहाँ डूबते हुए कवि के बचाने की प्रथम प्रेम-चेष्टा बालिका करती

१—इन्दु पर काव्य मे—शब्दार्थ—इन्दु=चन्द्रमा। रक्तिम=लाः पूर्व=प्रथम और पूर्व दिशा। अपूर्व=अद्वितीय, पूर्व से भिन्न दिशा। बाल-रजनी बालिका रूपी रात्रि और सध्या। अलक=चिकने कोमल बाल। शशि=चन्द्रम प्रमुखता=प्रधानता। सुछवि=सौन्दर्य।

कवि कहता है कि मेरी आँखें आकाश के चन्द्रमा पर और पृथ्वी के उस मुख पर एक साथ पडी। दोनो चन्द्र लाल-लाल हो रहे थे। एक तो उदय काल कारण लाल था और दूसरा लज्जा से लाल हो रहा था। पूर्व (पहिला अकाशवत चन्द्रमा तो पूर्व दिशा मे स्थित था परन्तु दूसरा अपूर्व था—पूर्व से भिन्न ि मे (भूमि पर) था और साथ ही अद्वितीय भी था। आकाश के चन्द्र के चारो उ जैसे श्यामल सन्ध्या घिरी थी उसी भाति भूमि का चाद काले केश-पाश से आ था। उसकी कोमल चिकनी अलक मानो बालिका रजनी थी जिसे मुख और चन्द्र मे भ्रान्ति हो रही थी और वह डोल रही थी। अर्थात् हवा के झोके मे बालिका बाल हिल रहे थे जो उसके मुख के सामने लटक जाते थे। लगता था कि आक और भूमि के दोनो चाद सौन्दर्य के काव्य थे जिनका बालरजनी तुलनात्मक अध्यः कर रही थी और परिणाम स्वरूप भूचन्द्र के सौन्दर्य-काव्य को प्रमुख महत्त्व देते । उसको रेखाङ्कित कर रही थी। (देखा जाता है कि काव्य के प्रमुख-प्रमुख स्थलो विद्यार्थी रेखाङ्कित कर दिया करते हैं।) ऐसी प्रतीत तब होती थी जब अलकें उस मुख पर 'अचल' हो जाती थीं, हिलना डुलना बन्द कर देती थीं।

१—कवि ने इस पद्य मे एक कुशल काव्य-निपुणता और कलाकारिता का प चय दिया है। प्रत्येक पक्ति अलङ्कारो के स्वाभाविक सन्निवेश मे चाँदनी ही गु

प्रतीत हो रही है। समग्रता की दृष्टि से पूरे पद्य मे व्यतिरेक अलङ्कार स्पष्ट है, क्योकि उपमेय और उपमान दिखाते हुए उपमेय में अपेक्षाकृत कुछ प्रमुखता बनाई गई है। अन्य अलकार व्यक्तिरेक की पुष्टि के लिए अङ्ग-रूप मे आ गये हैं।

२—"इन्दु-मुख" मे रूपक अलङ्कार तो स्पष्ट ही है।

३—'नयन' तक के अश मे सहोक्ति अलकार है क्योकि अप्रस्तुत और प्रस्तुत दोनो मे नयनो का पडना रूप व्यापार साथ ही दिखाया गया है।

४—"उदय से लाज से" मे यथासख्य अलकार है क्योकि दोनो का अन्वय इन्दु और इन्दुमुख के साथ क्रमश होता है।

५—"जो" से "हुए थे" तक के अश मे प्रस्तुत और अप्रस्तुत का समान धर्म बताया गया है जो रूपक की साङ्गता का पोषक हो रहा है।

६—"पूर्व को था पूर्व" मे पुनरुक्त विरोधाभास है।

७—"इन्दु" से "अपूर्व था" तक समग्र रूप मे व्यतिरेक अलकार हो जाता है क्योकि उपमेय मुख की तुलनात्मक विशेषता बताई गई है। 'अपूर्व' पद मे "अभग श्लेष" भी है। इसका एक अर्थ पूर्व दिशा से भिन्न और दूसरा अर्थ अद्वितीय होगा।

८—"बाल रजनी" मे बाल विशेषण से रजनी का मानवीकरण किया गया है।

९—"बाल" से लेकर "बीच मे" तक के अश मे भ्रान्ति मूलक उत्प्रेक्षालकार है। "बालरजनी सी" मे उपमा अलकार तो स्पष्ट ही है।

१०—"अचल" से लेकर "काव्य मे" के अश मे भी उत्प्रेक्षालङ्कार है।

११—"सुछवि के काव्य" अश मे व्यस्त रूपक है क्योकि सुछवि मे काव्य का व्यस्त रूप मे आरोप है।

१२—इस प्रकार इस पूरे पद्य मे दो चन्द्रो के वर्णन मे जैसी चन्द्रिका की चमचमाती सुन्दर छटा होनी चाहिये ठीक वैसी ही चाँदनी-सी छटा अलङ्कारो की सजावट मे अभिव्यक्त हो रही है।

२—एकपल ·· सौन्दर्य के—शब्दार्थ—दृग=आँखें। विकम्पित=कांपता हुआ। पुलक=रोमाञ्च। प्रणय=प्रेम। मादक=नशीली। सुरा=शराब। सस्मित=मुस्कान सहित। आवर्त=भँवर।

एक क्षण के लिए मेरी प्रेयसी बालिका की आँखें ऊपर उठी। मेरी और उसकी चार आखें हो गई। फिर उसी क्षण लज्जा के कारण स्वभावत उसकी आँखे नीचे गिर गई। इस चेष्टा मे मुझे प्रणय आरम्भ होने की सूचना मिल गई, उसके शरीर मे कँप-कँपी के साथ रोमान्च भी होने लगा जिससे मैंने जान लिया कि अब प्रेम-सम्बन्ध मे दृढता आ गई है। मेरा रहा-सहा सन्देह भी लुप्त हो गया। उसके गालो मे लज्जा की लाली छा गई जो ऐसी मादक और लाल थी जैसे सुरा (शराब) हो, अतः उसने मुझे मस्त बना दिया। एक तो उसके गाल गुलाब से कोमल एव लाल थे ही फिर उनमे लज्जा की लालिमा। फिर वह छलक क्यो न पडे? साथ ही वह मुस्करा भी पड़ी। प्रतीत होता था कि सौन्दर्य की बाढ बाहर छलक रही हो।

है जो मानसरोवर की भाँति होता है। दया रूपी पवन के स्पर्श से उसमे तरङ्ग रूपी रोमाञ्च उदित हो जाते है, क्योकि उसमे दयावान् व्यक्ति से किये गये सरल उपकारो का जल भर जाया करता है जो तरङ्गित हुए बिना नही रहता है। कृपापात्र व्यक्ति के हृदय का मानसरोवर अपने मे पडे हुए छोटे-से उपकार के प्रकाश को भी बडा प्रतिबिम्ब बनाकर ससार को दिखाया करता है। वह सरोवर ऐसा है कि प्रकाश की क्षीण लौ भी जिसमे बडे प्रतिबिम्ब रूप मे दीखाई पडती है। निराश्रित व्यक्ति को यदि थोडा सा अवलम्ब दिया जाय तो वह इतना कृतज्ञ हो जाता है कि वह ससार के सम्मुख उपकारी व्यक्ति का यश बहुत बढा-चढा कर प्रसारित किया करता है।

१—"अल्पता" का मानवीकरण होकर उसका अर्थ लक्षण से अत्यन्त अल्पता पूर्ण व्यक्ति होगा।

२—"दयानिल" से लेकर अन्त तक के अश मे साङ्ग रूप की योजना है।

६—शरद के निर्मल पर सदा—शब्दार्थ—तिमिर=अन्धकार, मादक=नशीला। मूकता=मौनता। अपाङ्ग=आँखो का कोना। वारि=जल। कर=हाथ और किरण।

कवि कहता है कि प्रिये! तुम्हारी काली अलकें मानो शरद ऋतु का निर्मल अन्धकार है जिनकी ओट से तुम्हारे पलको के दल मुझे देख रहे हैं। तुम्हारी आँखों मे प्रथम-मिलन की सी लज्जा है। (नवोढा प्रेयसी इतनी लजाली होती है कि वह अपने प्रिय को सम्मुख दृष्टि मे नही देख सकती है, अत वह बालो की ओट करके देखती है), तात्पर्य है कि तुम्हारा इस प्रकार छिपी और झुकी दृष्टि मे मुझे देखना मानो प्रथम-मिलन की लज्जा है। इन आँखो की ओट मे छिपा हुआ तुम्हारे अन्दर का प्रेम अपने मादक हाथो मे मुझे छू रहा है। तुम्हारी आँखो मे छलकने वाला प्रेम मुझे उन्मत्त बनाये दे रहा है। तुम छिपे-छिपे तो अपना प्रेम व्यक्त कर रही हो पर वाणी से स्पष्ट कह देने मे सङ्कोच का अनुभव कर रही हो।

कवि कहता है कि प्रिये! जो तुम मुझे सीधी दृष्टि से न देख कर आँख की कोर से देख रही हो क्या मैं उसे यह समझू कि प्रेम के (प्रेमी व्यक्ति को) देखने का यह कोई नया ही अजीब ढग है जिससे और भी अधिक दिखाई देता है। अवश्य यही बात होगी। यह प्रेम तो दूर होकर और अधिक बढता ही जाता है। विरह होने पर दोनो के बहुत अवधि तक बहुत दूर रहने पर उनका प्रेम घटने की अपेक्षा और अधिक दृढ और परिपक्व हो जाया करता है। प्रेम की रीति तो लोक-नियम से बिलकुल निराली ही है। प्रेम के आवेश मे प्रेमी प्रेम-सम्बन्धी सब क्रियाये कर ही डालता है, उसका रस, आनन्द सब कुछ ले लेता है और उसके पश्चात् जान-पात, घर, रूप, रग, परिस्थिति आदि की ओर ध्यान दिया करता है। प्रेमावेश मे प्रेमी "पानी पीकर जात पूछनी" वाली कहावत चरितार्थ करता है।

१—"मादक कर" का यहाँ पर मानवीकरण हुआ है। और प्रेम का भी मानवीकरण हुआ है। "कौन" इस प्रश्नवाचक विशेषण मे—प्रेम ही विनश्चित हो रहा है।

२—"कर" शब्द यहाँ श्लिष्ट भी है। एक अर्थ चन्द्रमा की किरण भी होगा

तब यो सगति होगी, जैसे शरद् के अन्धकार की आड मे चन्द्र की मादक किरणें छूती हैं। उसी प्रकार तुम्हारी मूकता की आड मे प्रेम का हाथ स्पर्श कर रहा है।

७—इन्दु की छवि · दीप सी—शब्दार्थ—अनिल=हवा। वीचि=तरङ्ग। स्मिति=मुसकान। विकलता=बेचैनी। अवनि=पृथ्वी। मृगेक्षिणि=हिरणी की सी आँख वाली। स्नेह-श्यामल=प्रेम से भरी और काली आँखे। स्निग्ध=ममय और चिकनी।

कवि कहता है कि जैसे मेरे हृदय मे अपनी प्रिया के प्रति एक प्रकार की प्रबल उत्सुकता का उदय हो रहा था उसी भाँति प्रकृति भी हम दोनों की उत्सुकता से प्रभावित होकर स्वय भी उत्सुक हो रही थी। चन्द्र की कान्ति मे और अन्धकार के गर्भ मे, पवन की बहती हुई सन-सन ध्वनि मे और जल की तरङ्गों मे तथा फूलो की मुसकान मे और लता के अधरो मे एक प्रकार की उत्सुकता विचर रही थी। ऐसे मादक वातावरण मे जब मैं बेचैनी से प्रतीक्षा कर रहा था, मेरी मृगनयनी प्रिया ने पृथ्वी पर से अपनी पलकों को और साथ ही मेरे हृदय से भरी छटपटाहट को ऊपर उठाया। एक क्षण के लिए उसने स्नेह से भरी श्यामल दृष्टि से मेरी आँखों मे प्रेम उडेल दिया मानो तेल के भरे पात्र से दीपक मे तेल भर कर उसे प्रज्वलित कर दिया हो। मैं कृत कृत्य हो गया।

१—"निज पलकों से उठा" के तक अश मे यथासख्य के साथ ही "सहोक्ति" अलङ्कार भी है जो इसलिए अधिक रोचक है कि दोनो वस्तुएं प्रस्तुत ही हैं। अलङ्कार-विधान के लिए कवि अप्रस्तुत विधान की ओर नही दौडा है। अन्तिम पक्तियो मे पूर्णोपमा है। 'स्निग्ध" शब्द श्लिष्ट है।

११—बादल

अवतरणिका—इस कविता मे कवि ने बादल को सजीव प्राणी के रूप मे चित्रित किया है और प्रत्येक छन्द मे अलग-अलग चित्र उपस्थित किये है। कल्पना-प्रधान ही यह कविता है। जहाँ-जहाँ मानवीकरण किया गया है वहाँ व्यक्ति विशेष-गत या आत्मगत भावो की प्रधानता है, आलम्बन रूप मे प्रकृति-वर्णन की विशेष प्रवृत्ति का स्पष्ट परिचय भी इस कविता से मिलता है।

१—सुरपति जीवन धर—शब्दार्थ—सुरपति=इन्द्र। जगत्प्राण=पवन। अनुचर सेवक। मेघदूत=इस नाम का काव्य। सजल=सरस और जल से भरा हुआ। जीवनधर=जीवन रक्षक।

मेघ स्वय अपना परिचय दे रहे हैं। वे कहते हैं कि हम ही इन्द्रदेव के अनुचर हैं। जगत् के प्राणभूत पवन के हम ही सहचर मित्र हैं। कालिदास के मेघदूत को हम सरस कल्पना के स्वरूप हैं। चातक के जीवन की सदा रक्षा करने वाले हैं।

१—बादल के जितने उपमान यहाँ पर दिये गये हैं वे सब उसकी गौरव शीलता-पूर्ण और प्रतिष्ठा पूर्ण व्यक्तित्व के परिचायक हैं। सुरपति के अनुचर होने से बादलों

समय प्रतीत होता है कि तीनो लोको की कल्पनायें एकत्रित होकर एक विशाल साकार रूप मे परिणत हो गई हैं और उनके नाना प्रकार के रूप दृष्टिगोचर हो रहे हैं। इस भाति हम आकाश के अङ्क को भरते हुए अनन्त के हृदय मे क्रीडा कौतुक करते हैं।

१—इस छन्द मे कुछ अस्पष्ट रूप मे मा की गोदी मे निःशङ्क रूप से बाल क्रीडा करने वाले बालक का चित्र भी उपस्थित हो रहा है। यह भाव "अङ्क" और 'उर" शब्दो मे झलकता है। परन्तु नभ और अनन्त शब्दो का पुल्लिङ्ग प्रयोग इस भाव को अपूर्ण और अस्फुट कर देता है।

७—कभी चौकडी ... चरते—शब्दार्थ। मतङ्गज=हाथी। सजग=चौकन्ना। शशक=खरगोश।

ऊपर के छन्द मे बताये गये विविध आकारो का यहा से आगे कुछ विशदीकरण किया गया है। मेघ कहते हैं कि आकाश के विस्तृत अमरूप प्रान्त मे हम कभी मृग का सा आकार बनाकर चौकडी भरा करते है, इतना उछलते कूदते है कि जमीन पर पैर नही रखते हैं। भूमि का स्पर्श भी नही करते हैं, और कभी मदमस्त हाथी की भाति झूमते रहते हैं। कभी कान खडे करके सावधान खरगोश की भाँति चरा करते हैं।

१—यहाँ बादलो का सजीवीकरण किया गया है। कवि ने एक ऐसे अरण्यप्रान्त का चित्र उपस्थित किया है जिसमे मृग चौकडी भर रहे हैं, हाथी झूमते हुए चल रहे हैं और खरगोश चौकन्ने होकर चर रहे हैं।

२—वन्य-प्राणियो का मार्मिक और स्वाभाविक वर्णन भी किया गया है जो कवि के प्राणि-जगत् के सूक्ष्म निरीक्षण का एवं उनके स्वभाव-ज्ञान का परिचायक है।

३—कलागत विशिष्टता एक यह भी है कि केवल एक शब्द ने या सामान्य मुहावरो के समुचित प्रयोग से प्रत्येक प्राणी का पूरा स्वभाव और पूरा चित्र उपस्थित किया गया है। जैसे "जमीन मे पैर न रखना और चौकडी भरना" बस इन दो मुहावरो के बल से मृग की चचलता, मस्ती, भोलापन आदि सब कुछ साक्षात् हो जाता है। "मस्त और झूमते" बस इन दो चुने हुए पद ही हाथी का स्पष्ट चित्र खडा कर देते हैं। "मतङ्ग" का चुनाव भी उसके चित्रण मे पूरा सहयोग दे रहा है। "सजग और चरते" ये दो चुने हुए पद ही खरगोश की पूरी तस्वीर खीच रहे हैं।

४—इस छन्द मे जितने व्यापारो और विशेषणो की योजना है उनका झुकाव बादल की ओर कम है और उपमानो की ओर अधिक हो रहा है।

५—मृग के लिए "चौकडी भरते" बस इतना ही पर्याप्त था, कोई कमी न रहती, "भू पर चरण नहीं धरते" का अर्थ भी उसी चौकडी भरते मे पूरा आजाता है। अत आप दूसरी पक्ति को व्यर्थ की भरती न समझिये कवि की कला बडी चतुर है। चौकडी करने का पूरे का पूरा झुकाव मृग की ओर ही है, बादल की ओर नही है, इसलिए बादल (जो प्रस्तुत है) की गति विधि को स्पष्ट करने के लिए दूसरी पक्ति की सार्थकता है।

६—"चरते" क्रिया पद भी शशक की ओर ही अधिक अन्वयित होता है, बादल के पक्ष में इसका अर्थ खींचातानी से विचरना करना पड़ता है। पर इसका परिहार यों भी किया जा सकता है कि कविता में र और ल का आवश्यकतानुसार अभेद माना जाता है। इस प्रकार बादल के पक्ष में "चरते" को "चलते" कर दिया जायेगा।

८—कभी कोश तरते—शब्दार्थ—कोश=कलिका-सम्पुट। नीरवता=चुप्पी। विहगछद=चिड़ियों के पङ्ख।

कभी हम पवन रूपी डाल में कलिका के सम्पुटों की भाँति शान्त और मौन रहते हैं। और कभी हम एक बड़े गिद्ध का आकार धारण करते हैं जो आकाश में उड़ता हुआ पक्षियों के पंखों को नोच-नोच कर तितर-बितर कर रहा हो, एक बड़े श्यामल बादल-खण्ड के चारों ओर बिखरे हुये छोटे छोटे-सफेद बादलों के टुकड़े आकाश में फैल जाया करते हैं।

१—"नीरवता से मुँह भरते" का अभिप्राय यह है कि डाल में लगी कलिकायें अभी खिली नहीं है और उनमें सुगन्धि का विकास नहीं हुआ है, अत भौंरों का शब्द उनमें नहीं हो रहा है। यदि विकसित अवस्था में कलिका सम्पुट होते तो वे मुखरता से मुँह भरा करते। पर अविकसित है इसलिए "नीरवता से मुह भरते" हैं।

२—यहाँ कवि ने दो चित्र उपस्थित किये हैं। एक तो यह कि एक शाखा पुष्प सम्पुटों से लदी हुई है जिसमें भौंरों का गुंजार नहीं हो रहा है। दूसरा यह कि एक विशालकाय गिद्ध आकाश में उड़ता हुआ पंखों को छितराता जा रहा है।

३—"विगह छदों" का प्रयोग कुछ विचारणीय है। यदि 'विहग' पद को हटा दिया जाता तो कोई हानि नहीं थी। अथवा। "विहग छदों" के स्थान पर "निज पाँखों" या ऐसा ही कुछ और कर दिया जाता तो कभी कोई हानि न थी। "विहग" के प्रयोग से ऐसा चित्र खिंचता है कि एक विशाल गृद्ध दूसरे उड़ते हुए विहगों के पंखों को नोचकर फैला रहा है। गृद्ध का ऐसा स्वभाव नहीं होता कि वह अन्य पक्षियों के परों को नोचकर फैलाता हो। हाँ बाज-पक्षी के लिए ऐसा कहा जा सकता है। और यदि विहग को हटा दें तो चित्र ऐसा न है कि गृद्ध बड़े वेग से उड़ रहा है, और उस वेग के आघात से उसके अपने ही पंख टूट-टूट कर आकाश में बिखर रहे हैं। ऐसा देखा भी जाता है। इसलिए "विहग' शब्द का प्रयोग यहाँ व्यर्थ।

९—कभी अचानक संसार—शब्दार्थ-विकट=विचित्र भयंकर।

हम कभी एकाएक भूतों का सा विशाल एवं भयंकर आकार प्रकट कर देते हैं और फिर सब मिलकर एक साथ कड़कड़ाते हुए अट्टहास करते हैं। उस समय सारा संसार भय से थर्रा उठता है।

१०—फिर सुकुमार—शब्दार्थ—सुभग=समुद्र। सुन्दर=प्रसन्नता पूर्वक। शुचि=शुभ्र। ज्योत्स्ना=चाँदनी।

यह शरद के शुभ्र बादलों का वर्णन है जब वे काले नहीं शुभ्र हो जाते है।

और खण्ड-खण्ड मे चाँदनी रात मे नीले आकाश मे उडते रहते हैं। कवि कहता है कि हम कभी परियो के बच्चो के समान श्वेत सीपी के शुभ्र पखो को पसार कर और चन्द्रमा के कोमल करो (हाथो) को पकडकर आनन्दपूर्वक ज्योत्स्नापूर्ण आकाश के नीले सागर मे तैरा करते है।

१—परियो के बच्चो की जैसी सुकुमार कल्पना है वैसा ही शुभ्र, कोमल और सुकुमार सामग्रियो का चयन इन पक्तियो मे किया गया है। "सीप के पख" की उपमा वर्ण और आकार दोनो रूपो मे मनोरम है। वे सीपी के पख शरत्चद्रिका मे भी चमचमा रहे हैं। वस्तुतः शरद् की ज्योत्स्ना मे रजत रेखा (Silvery line) वाले वादलो का इससे अच्छा विशद वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है।

११—अनिल घनघोर—शब्दार्थ—विलोडित=मथा हुआ। सिन्धु=समुद्र। उपल=ओले। तिमिर=अन्धकार।

कभी हम आकाश रूपी समुद्र मे चारो ओर से आंधी तूफान उठाते हुए वाढ की भाँति मँडराते है और भीषण अन्धकार एव ओलो की भीषण बौछार करने लगते हैं।

१—यहाँ पर प्रलयकालिक समुद्र का चित्र प्रस्तुत किया गया है। प्रलयकाल मे समुद्र में तूफानी उत्ताल तरगे उठकर पृथ्वी की ओर बढने लगती हैं जिनमें पृथ्वी डूब जाती है। घनघोर अन्धकार सर्वत्र छा जाया करता है।

१२—वात वात . वातुल चोर—शब्दार्थ—तूलतोभ=कपास के गुच्छे। विटप=वृक्ष। द्रुत=शीघ्र। दलवलयुत=झोंको के साथ, सेना सहित। वातुल चोर=हवा रूपी चोर।

फिर वात की वात मे हवा के झोंके जव हमको झटके मे झपट कर उडा ले जाते हैं। जब पवन रूपी चोर आकाश रूपी कपास की वृक्षो मे लटकते है, कपास के गुच्छो को झोके रूपी दल वल के साथ आकर लूट घसोट कर शीघ्र उडा ले जाता है तव—

१३—बुदबुद धुनि अविराम—शब्दार्थ—जम्वाल जाल=पानी के ऊपर की काई का समूह। अविराम=निरन्तर।

तव हम खण्ड खण्ड होकर आकाश मे उडते रहते हैं। बुदबुदो से भरे यमुना के जल मे काली काई के टुकडो की भाति नक्षत्रो से भरे अन्धकारमय आकाश मे हम वहते रहा करते हैं।

१—रूपक द्वारा ऐसा चित्र प्रस्तुत किया गया है कि यमुना के किनारे कपास के वृक्षो मे लटकते हुए गुच्छो को एक चोर दलबल सहित आकर लूट ले जाता है और इस लूटा झपटी मे कुछ खण्ड बुदबुदो से भरे यमुना के जल मे गिर कर वहने लग-जाते हैं।

१४—दमयन्ती-सी ललाम—शब्दार्थ—कुमुद कला=चन्द्र-कला। रजतकर=चादी मे स्वच्छ हाथ और चादी-सी शुभ्र किरणें। स्वर्ण हस=सोने का हस। प्रिय-सन्देश=प्रियतम का सन्देश। ललाम=सुन्दर।

फिर हम पर चांदनी की किरणें भी पड़ती रहती है जिससे हमारा वर्ण कुछ-कुछ सुवर्ण की भांति पीला हो जाता है और मन्द मन्द गर्जना भी करते रहते हैं। प्रतीत होता है कि मानो के हम दमयन्ती के चमकीले हाथो मे बैठकर उनसे मीठी-मीठी ध्वनि मे नल का सन्देश कह रहे हों।

१—"रजत करो" मे रजत का अर्थ दमयन्ती के पक्ष मे "रंजित" करना पड़ेगा। क्योकि हाथ की लालिमा अथवा गोरता से चादी का वर्ण साम्य न हो सकता है।

१५—दुहरा · वायुविहार—शब्दार्थ। विद्युद्दाम=बिजली की चमक और बिजली रूपी डोरी पटह=नगाड़े—निर्घोषित=गरजकर। विशिख=बाण। वज्रायुध=वज्ररूपी शस्त्र और वज्र के समान कठोर शस्त्र। वासव सेना=इन्द्र की सेना। आसार=वृष्टि। वायु विहार=हवाखोरी करना और हवा मे उड़ना।

शीघ्र ही बिजली चमकती है, हम गरजते हैं। एक ओर इन्द्र धनुष भी खिंचा रहता है। गरज के साथ वर्षा होने लगती है। पर्वतो पर बिजली गिरती है तो वे चूर-चूर हो जाते हैं। उस समय हमारा आकार बड़ा भीषण हो जाता है और हम हवा मे उड़ते रहते हैं। प्रतीत होता है कि इन्द्र अपने धनुष पर दुहरी डोरी चढ़ाकर टङ्कार कर रहा है, बाणो की बौछार कर रहा है और अपने कठोर वज्र के आघात से पर्वतो को चूर्ण कर रहा है। हम इन्द्र की सेना की भांति शराब के नशे मे भयङ्कर आकार वाले हवाखोरी करते रहते हैं। (युद्ध विजय के पश्चात् सैनिकों का स्वच्छन्द हवाखोरी करना प्रसिद्ध है)।

१—इन्द्र का युद्ध वैदिक इतिहास मे प्रसिद्ध है। यह भी पौराणिक कथा है कि पर्वतो के पंख हुआ करते थे, उड़-उड़कर जहा-तहा नगरो, ग्रामो और बस्तियो पर बैठकर संहार करना उनका नित्य का खेल था। प्रजा की पुकार सुनकर इन्द्र ने पर्वतो पर चढ़ाई की और वज्र से उनके पंख काट डाले। तब से पर्वतो का नाम अचल पड़ गया।

१६—व्योम विपिन पात—शब्दार्थ—व्योम-विपिन=आकाश रूपी वन। पल्लवित=पल्लवो से भरा। अनिल-स्रोत=पवन रूपी प्रवाह या झरना। तमाल-तम=तमाल वृक्षरूपी अन्धकार।

आकाश मे जब-जब प्रकाश-पूर्ण प्रभात आता है, तब अन्धकार का नाश हो जाता है और हम हवा मे उड़ जाया करते हैं। उस समय प्रतीत ऐसा होता है कि वन मे वसन्त ऋतु के आगमन पर नूतन पल्लव खिल गये हैं और नदी के स्रोत मे तमाल के काले पत्ते झड़कर बह रहे हैं।

१७—उदयाचल · बात—शब्दार्थ—उदयाचल=वह पर्वत जहाँ से सूर्योदय होता है। अम्बर=आकाश। अवदात=शुभ्र। हंस=सूर्य और पक्षी।

प्रातःकाल जब हंस के समान बाल सूर्य आकाश मे उड़ता है तब हम उसके चारो ओर फैले रहते हैं और तब हमारी कान्ति सुवर्ण-सी हो जाती है। लगता है कि हम उस उड़ते हुए हंस के फैले हुए पंख हों। फिर शीघ्र ही हवा के झोंके हमें उड़ा ले जाते हैं।

और खण्ड-खण्ड मे चाँदनी रात मे नीले आकाश मे उडते रहते हैं। कवि कहता है कि हम कभी परियो के बच्चो के समान श्वेत सीपी के शुभ्र पखो को पसार कर और चन्द्रमा के कोमल करो (हाथो) को पकडकर आनन्दपूर्वक ज्योत्स्नापूर्ण आकाश के नीले सागर मे तैरा करते हैं।

१—परियो के बच्चो की जैसी सुकुमार कल्पना है वैसा ही शुभ्र, कोमल और सुकुमार सामग्रियो का चयन इन पक्तियो मे किया गया है। "सीप के पख" की उपमा वर्ण और आकार दोनो रूपो मे मनोरम है। वे सीपी के पख शरत्चद्रिका में भी चमचमा रहे हैं। वस्तुतः शरद् की ज्योत्स्ना में रजत रेखा (Silvery line) वाले बादलो का इससे अच्छा विशद वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है।

११—अनिल घनघोर—शब्दार्थ—विलोडित=मथा हुआ। सिन्धु=समुद्र। उपल=ओले। तिमिर=अन्धकार।

कभी हम आकाश रूपी समुद्र मे चारो ओर से आँधी तूफान उठाते हुए बाढ की भाँति मँडराते हैं और भीषण अन्धकार एव ओलो की भीषण बौछार करने लगते हैं।

१—यहाँ पर प्रलयकालिक समुद्र का चित्र प्रस्तुत किया गया है। प्रलयकाल मे समुद्र में तूफानी उत्ताल तरगे उठकर पृथ्वी की ओर बढने लगती हैं जिनमें पृथ्वी डूब जाती है। घनघोर अन्धकार सर्वत्र छा जाया करता है।

१२—बात बात . बातुल चोर—शब्दार्थ—तूलतोभ=कपास के गुच्छे। विटप=वृक्ष। द्रुत=शीघ्र। दलवलवयुत=झोको के साथ, सेना सहित। वातुल चोर=हवा रूपी चोर।

फिर बात की बात मे हवा के झोके जब हमको झटके मे झपट कर उडा ले जाते हैं। जब पवन रूपी चोर आकाश रूपी कपास की वृक्षो मे लटकते हैं, कपास के गुच्छो को झोके रूपी दल बल के साथ आकर लूट घसोट कर शीघ्र उडा ले जाता है तब—

१३—बुदबुद धुनि अविराम—शब्दार्थ—जम्बालजाल=पानी के ऊपर की काई का समूह। अविराम=निरन्तर।

तब हम खण्ड खण्ड होकर आकाश मे उडते रहते हैं। बुदबुदो से भरे यमुना के जल मे काली काई के टुकडो की भाति नक्षत्रो से भरे अन्धकारमय आकाश मे हम बहते रहा करते हैं।

१—रूपक द्वारा ऐसा चित्र प्रस्तुत किया गया है कि यमुना के किनारे कपास के वृक्षो मे लटकते हुए गुच्छो को एक चोर दलबल सहित आकर लूट ले जाता है और इस लूटा झपटी मे कुछ खण्ड बुदबुदो से भरे यमुना के जल मे गिर कर बहने लग-जाते हैं।

१४—दमयन्ती-सी ललाम—शब्दार्थ—कुमुद कला=चन्द्र-कला। रजतकर=चादी से स्वच्छ हाथ और चादी-सी शुभ्र किरणें। स्वर्ण हस=सोने का हस। प्रिय-सन्देश—प्रियतम का सन्देश। ललाम=सुन्दर।

फिर हम पर चादनी की किरणे भी पडती रहती है जिससे हमारा वर्ण कुछ-कुछ सुवर्ण की भाति पीला हो जाता है और मन्द मन्द गर्जना भी करते रहते हैं। प्रतीत होता है कि सोने के हंस दमयन्ती के चमकीले हाथो से बैठकर उनसे मीठी-मीठी ध्वनि मे नल का सन्देश कह रहे हों।

१—"रजत करो" मे रजत का अर्थ दमयन्ती के पक्ष मे "रजित" करना पडेगा। क्योकि हाथ की लालिमा अथवा गौरता मे चादी का वर्ण साम्य न हो सकता है।

१५—दुहरा वायुविहार—शब्दार्थ। विद्युद्दाम=बिजली की चमक और बिजली रूपी डोरी पटह=नगाडे—निर्घोषित=गरजकर। विशिख=बाण। वज्रायुध=वज्ररूपी शस्त्र और वज्र के समान कठोर शस्त्र। वासव सेना=इद्र की सेना। आसार=वृद्धि। वायु विहार=हवाखोरी करना और हवा मे उडना।

शीघ्र ही बिजली चमकती है, हम गरजते है। एक ओर इन्द्र धनुष भी खिचा रहता है। गरज के साथ वर्षा होने लगती है। पर्वतो पर बिजली गिरती है तो वे चूर-चूर हो जाते है। उस समय हमारा आकार बडा भीषण हो जाता है और हम हवा मे उडते रहते हैं। प्रतीत होता है कि इन्द्र अपने धनुष पर दुहरी डोरी चढाकर टङ्कार कर रहा है, बाणो की बौछार कर रहा है और अपने कठोर वज्र के आघात से पर्वतो को चूर्ण कर रहा है। हम इन्द्र की सेना की भाति शराब के नशे मे भयङ्कर आकार वाले हवाखोरी करते रहते हैं। (युद्ध विजय के पश्चात् सैनिको का स्वच्छन्द हवाखोरी करना प्रसिद्ध है)।

१—इन्द्र का युद्ध वैदिक इतिहास मे प्रसिद्ध है। यह भी पौराणिक कथा है कि पर्वतो के पंख हुआ करते थे, उड-उडकर जहा-तहा नगरो, ग्रामो और बस्तियो पर बैठकर संहार करना उनका नित्य का खेल था। प्रजा की पुकार सुनकर इन्द्र ने पर्वतो पर चढाई की और वज्र से उनके पंख काट डाले। तब से पर्वतो का नाम अचल पड गया।

१६—व्योम विपिन पात—शब्दार्थ—व्योम-विपिन=आकाश रूपी वन। पल्लवित=पल्लवो से भरा। अनिल-स्रोत=पवन रूपी प्रवाह या झरना। तमाल-तम=तमाल वृक्षरूपी अन्धकार।

आकाश मे जब-जब प्रकाश पूर्ण प्रभात आता है, तब अन्धकार का नाश हो जाता है और हम हवा मे उड जाया करते हैं। उस समय प्रतीत ऐसा होता है कि वन मे वसन्त ऋतु के आगमन पर नूतन पल्लव खिल गये हैं और नदी के स्रोत मे तमाल के काले पत्ते झडकर बह रहे हैं।

१७—उदयाचल बात—शब्दार्थ—उदयाचल=वह पर्वत जहाँ से सूर्योदय होता है। अम्बर=आकाश। अवदात=शुभ्र। हंस=सूर्य और पक्षी।

प्रात काल जब हंस के समान चाल सूर्य आकाश मे उडता है तब हम उसके चारो ओर फैले रहते हैं और तब हमारी कान्ति सुवर्ण-सी हो जाती है, लगता है कि हम उस उडते हुए हंस के फैले हुए पंख हो। फिर तेज ही हवा ये झोके हमें उडा ले जाते हैं।

१८—सन्ध्या का .... विश्राम—शब्दार्थ—मिलिन्द=भ्रमर। विमुग्ध=मस्त होकर, बेहोश होकर।

सन्ध्या के समय हम निश्चल रूप मे आकाश मे विश्राम करने लगते हैं। उस समय हमारा काला वर्ण कुछ लाली लिये हुए रहता है। प्रतीत होता है कि सन्ध्या की लालिमा रूपी नशीले पराग का पान कर के भौंरे आकाश रूपी नील कमल मे बेहोशी मे झूमते हुए निर्भय विश्राम कर रहे हैं।

१९—फिर .... निकाय—शब्दार्थ—वाडव=समुद्र की अग्नि। सान्ध्य=सन्ध्या कालिक। सिन्धु=समुद्र। तारावलि=तारो का समूह। निकाय=बहुत।

फिर हम सन्ध्याकालिक आकाश मे अग्निज्वाला की भांति शोभित होते हैं। तब ऐसा लगता है कि आकाशरूपी समुद्र मे वाडव की ज्वालायें उठ रही हो। वाडवाग्नि की भांति हम आकाश रूपी समुद्र को सुखाकर तारासमूह रूपी रत्न-राशि को इधर-उधर बिखरा देते हैं।

२०—धीरे धीरे .... भोर—शब्दार्थ—सशय=सन्देह, भ्रम। अपयश=अपकीर्ति। लालसा=आकाक्षा।

आकाश रूपी मानव के हृदय मे हम सशय की भांति उठा करते है और आकाश मे एक छोर से दूसरे छोर तक ऐसे शीघ्र फैल जाया करते हैं जैसे मानव का अपयश शीघ्र फैल जाया करता है। आकाश मे इस भांति उमडा करते हैं जैसे मानव के हृदय मे मोह उमडा करता है। आकाश मे रात-दिन ऐसे फैले रहते हैं जैसे मानव के हृदय मे रात-दिन लालसायें या नाना प्रकार की आकाक्षायें भरी रहती है।

१—यहाँ आकाश का मानवीकरण है। बादल के जितने उपमान हैं सब अमूर्त हैं, मूर्त के लिए अमूर्त विधान छायावाद की एक विशेषता है। सशय, अपयश, मोह और लालसा ये सब उपमान-मानव जीवन मे अनिश्चित एव तमोगुणीय होते है, अत बादल के काले रग के कारण उपमान बनने मे समर्थ है। यह पद्य मालोपमा का अच्छा उदाहरण है।

२१—इन्द्र चाप .... ओर—शब्दार्थ—भृकुटि=भौंह। विप्लव भय=सहार या उत्पात का भय।

हम आकाश रूपी मानव की इन्द्र धनुष-सी भौहो पर एक मौन चिन्ता की भांति छा जाया करते हैं और फिर, बाढ, भूकम्प, अकाल आदि विप्लवो के भय की भांति हाहाकार करते हुए शीघ्र चारो ओर छा जाया करते हैं।

१—लिख दिया है कि कोई मानव घोर चिन्ता मे मग्न हुआ मौन बैठा है। उसकी भौंहो की श्यामल भङ्गिमा से स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि वह किसी घोर चिन्ता मे बैठा हुआ है। इतने ही मे कोई विप्लव हाहाकार मचाता हुआ चारो ओर छा गया और वह पुरुष भय से काँप उठता है।

२—पुल्लिंग बादल के लिए स्त्रीलिंग चिन्ता का उपमान शिथिल प्रतीत होता है।

३—भृकुटि के उपमान "इन्द्र चाप" मे केवल उसका अर्धवृत्त आकार ही यहाँ विवक्षित है, उसका रूपरङ्ग नही ।

४—आकाश का मानवीकरण तो स्पष्ट ही है ।

२२—पर्वत. . जलधार—शब्दार्थ—काल चक्र=समय का क्रम ।

कभी हम विशाल पर्वताकार को छोडकर धूल की भाँति छोटा स्वरूप धारण कर लेते हैं और कभी छोटे धूलि-पुज के आकार से बढकर एक विशाल पर्वत का स्वरूप धारण कर लेते हैं । कालक्रमकी भाँति ऐसे ही हमारा उत्थान-पतन होता रहता है । क्षण भर मे हम जल से भरे रहते हैं तो क्षण भर मे जलधारा के रूप मे बदल जाते हैं ।

२३—कभी हवा . . .नि सार—शब्दार्थ—विभव भूति=सम्पत्ति, ऐश्वर्य ।

कभी हम हवा मे महल बनाया करते हैं—हम महलो का आकार धारण करते हैं । कभी आकाश मे पुल बाधते हैं । एक छोर से दूसरे छोर तक इन्द्र धनुष का पुल सा बाध देते है । फिर सहसा विलीन हो जाया करते हैं । ऐश्वर्य और सम्पत्ति की भाति हमारा जीवन नि सार और क्षणिक होता है । जैसे सम्पत्तिवान् व्यक्ति नाना आकाक्षाओ के हवाई महल बनाया करते हैं और जीवन मे कितनी ही योजनाओ की कल्पना करते रहते हैं, वे सब स्वप्न उनके शीघ्र विलीन हो जाया करते है, फिर किसी समय दिवालिये भी बन जाते हैं, ठीक उसी भाति हमारा व्यापार भी होता रहता है ।

२४—नग्न तत्काल—शब्दार्थ—नग्न=निर्मल और पत्रहीन । पतङ्ग= कीट पतग और सूर्य ।

कभी हम निर्मल आकाश मे जाल की भाति छा जाते हैं और सूर्य को ढक देते हैं । प्रतीत होता है कि आकाश रूपी पत्र-हीन शाखा पर मकडी का जाल फैला है और उसमे उडता हुआ पतंग या मक्खी फँस गई है ।

२५—फिर .डाल—शब्दार्थ—आतप=धूप । मूर्छित=कुम्हलाई हुई । जागृत=हरी-भरी । हिम जल=ओस बिन्दु ।

फिर हम धूप मे मुरझाई हुई कलियो पर ठण्डी-ठण्डी ओस की बूँदे डालकर उनको हरी-भरी बनाया करते हैं । प्रतीत होता है कि आकाश रूपी पुरुष के हृदय की करुणा द्रवित हो गई हो, दु ख और तापो मे मूर्छित कलियो (बालिकाओ) की, उस शीतल उपचार से मूर्च्छा भग हो गई हो ।

१—आकाश को एक सहृदय और दयावान् पुरुष के रूप मे चित्रित किया गया है जो मानवीकृत कलिकाओ का सन्ताप हरण कर रहा है ।

२६—हम सागर मूल—शब्दार्थ—वारिवसन=पानी के बने हुए वस्त्र ।

हम समुद्र के मानो शुभ्र हास हैं । हम मानो जल के धुएँ हैं । हम मानो आकाश की धूल हैं । हम हवा के मानो झाग हैं । हम मानो उषा रूपी डाली के नव-पल्लव हैं । हम मानो पानी से बुने गये वस्त्र हैं । और हम पृथ्वी के मूल कारण । हमारे अस्तित्व से पृथ्वी मे जीवन और हरा-भरापन स्थायी रहता है ।

१—इसमे सब लक्षणामूलक उत्प्रेक्षाओ का विधान किया गया है।

२७—नभ मे ... तूल—शब्दार्थ—अवनि=पृथ्वी। अम्बर=आकाश। सलिल-भस्म=जल से निर्मित राख। पावक=अग्नि। तूल=रुई।

जब हम आकाश मे छाये रहते हैं तब प्रतीत ऐसा होता है कि आकाश मे पृथ्वी तल बन गया है। हम पानी की राख हैं। जैसे लकडी जलकर भस्म रूप बन जाती है वैसे ही पानी जलकर बादल बनते हैं। हवा रूपी वृक्ष के मानो फूल हैं। जल के ऊपर छा जाने पर हम जल मे स्थल की भ्रान्ति पैदा किया करते हैं। पृथ्वी मे हम जल रूप मे बरसते हैं। हमारे छा जाने पर दिन मे भी अन्धकार हो जाता है। सन्ध्याकाल मे हम अग्नि की बनी हुई रुई का आकार धारण कर लेते हैं।

१—यहा सब उपमान लाक्षणिक एव काल्पनिक हैं।

२८—व्योम बेलि ... यान—शब्दार्थ—हम आकाश मे लहलहाती हुई मानो लता हैं। हम ताराओ की गति हैं। जब हम आकाश मे उडते है तो तारे चलते हुए प्रतीत होते हैं। हम आकाश के सगीत हैं। हमारा गर्जन ही मानो आकाश का सगीत है। सदा जागने रहने वाले तारो के मानो हम आलस्य है। हम मानो चलते-फिरते पर्वत हैं। हम चन्द्रिका के बने हुए बरफ के खण्ड हैं और है चन्द्रमा की सवारी।

१—यहा भी सब लाक्षणिक उपमान है।

२—"चलते अचल" मे विरोधाभास अलकार है। क्योंकि दोनो पदो का प्रथम दृष्टि मे विरोध प्रतीत होता है, पर "अचल' का रूढ अर्थ पर्वत होने पर विरोध का परिहार हो जाता है।

३—मूर्त के लिए अमूर्त तन्द्रा का विधान है। आलस्य के लिए काला-रग ही काव्य मे प्रसिद्ध है। जागते हुए को आलस्य आ जाना स्वाभाविक होता है। अत "अपलक" का प्रयोग बहुत साथक होने से "परिकरालङ्कार" है।

४—"शशि" का भी मानवीकरण किया गया है क्योंकि यान मानवो के पास ही होता है।

२९—पवन धेनु ... महान्—शब्दार्थ—पवन-धेनु=हवा की गाय। पांशुल=धूल भरा। श्रम=थकावट, परिश्रम। विरल वितान=फटा फटा सामियाना। जल खग=जल मे बने पक्षी। अम्बुधि=समुद्र।

हम पवन रूपी ग्वाले की गाय हैं। पवन ही हमको हाँक-हाँककर चराया करता है। हम सूर्य के धूल भरे परिश्रम हैं। सूर्य रूपी पथिक चलते-चलते थक जाता है और वह अपने शरीर मे भरी हुई जो धूल को झाडता है वही हम हैं। हम पानी के बने हुए और (सन्ध्याकाल मे) अग्नि के बने हुए स्थान स्थान पर तने हुए सामयाने हैं। आकाश रूपी आँख की मानो पलक हैं। जल के बने हुए मानो उडनेवाले पक्षी हैं। हम बहते हुए स्थल हैं। जब हम आकाश मे उडते हैं तो प्रतीत होता है कि आकाश रूपी समुद्र मे स्थल तैर रहा है। और हैं समुद्र की महान् कल्पना, जैसे कल्पना करता हुआ व्यक्ति भूमि से (वास्तविक ससार से) उठकर आकाश मे

उडान भरता है, उसकी कल्पना आकाश में उडान भरती है। उसी प्रकार हम भी मानो समुद्र के हृदय से उठकर आकाश मे उडान भरा करते हैं।

१—यहाँ भी लक्षणामूलक उत्प्रेक्षाओं मे बादल को चित्रित किया गया है।

३०—धूम-धुंआरे .. .... फणिधर—शब्दार्थ—मदन-राज=कामदेवरूपी राजा। फणिधर=साँप।

हम धुंए की भाति धूमिल हैं। काजल की भाति काले हैं। हम ही विकराल बादल हैं। हम ही मानो मदनरूपी राजा के वीर बहादुर सिपाही हैं। जब मदन रूपी राजा आक्रमण के लिए चलता है तब हम ही सैनिक कार्य करते हैं। हमारे ही दर्शन से मदन राज का, मानवो के हृदयो मे, प्रभुत्व स्थापित हो पाता है। प्रेमियो की वियोग दशा मे हम उनकी दृष्टि से ऐसे व्यथाजनक प्रतीत होते हैं मानो वर्षाकाल के उडते हुए सर्प हो।

१—नाद-सौन्दर्य के लिए 'ल' के स्थान पर 'र' कर दिया गया है। साथ ही शब्द-चयन ऐसा उचित है कि प्रथम-पक्ति काले बादलो का ध्वनि चित्र उपस्थित कर देती है।

३१—चमक अमर—शब्दार्थ—विष-सीकर=विष के कण। स्वर्ग-सेतु=स्वर्ग का पुल। कामरूप=इच्छानुसार वाले और कामवासना वाले। घनश्याम=काले बादल, और श्रीकृष्ण।

हम मानो वशीकरण मन्त्र है जो चमकते हैं और क्षण मे झमक कर अन्धकार कर देते है। जब हम गरज कर घहुरते हैं तो विष के फव्वारे की भाँति प्रतीत होते हैं। जब हम इन्द्रधनुष धारण करते हैं तब वह धनुष स्वर्ग के पुल की भाँति लगता है। हम काले बादल, इच्छानुसार अपना रूप बदला, करते हैं। हम भगवान् श्रीकृष्ण (घनश्याम) हैं जो कामरूप थे (इतने कामी थे कि १६ हजार पत्नियां रखते थे)। अथवा वे भी इच्छानुसार अपना रूप धारण किया करते थे (अवतार रूपों मे)।

१२—मुसकान

अवतरणिका—यह रहस्यवाद की कविता है। रहस्यवादी शैली मे कवि या साधक अपना माधुर्य सम्बन्ध चिरन्तन सत्ता (व्यापक ब्रह्म) से स्थापित किया करता है। यह सम्बन्ध प्राय पति-पत्नी का, मा और पुत्र का या मित्र-मित्र का हुआ करता है। इस कविता मे कवि अपने को एक प्रेमिका, नारी के रूप मे और असीम चिरन्तन सत्ता (ब्रह्म) को अपने प्रियतम के रूप मे चित्रित करता है। प्रेमिका की भाति कवि भी उस पतिरूप ब्रह्म की ओर से प्रकृति के उपादानो द्वारा नाना प्रकार के सकेत प्राप्त करता है। उन सकेतो की जो जो प्रतिक्रियायें प्रेमिका रूप कवि से होती हैं उनका यहा पर वर्णन किया गया है।

१—यहेंगे . . मुसकान।

प्रेमिका अपनी सखी से कह रही है कि उनके सकेतो को देखकर मैं इतनी प्रफुल्लित हो जाती हूँ कि सुधबुध खोकर मुसका ही तो पडती हूँ। फिर कभी एका-

मे अभी यौवनगत लज्जा है इसीलिए उस भोली अबोध को उकसाने का प्रयत्न पहिले प्रियतम की ओर से हो रहा है।

२—दो प्रेमियो के मिलन का वातावरण सुनसान रात्रि ही उचित हुआ करता है। प्रेमी बहुत चतुर है, उसे भय है कि ससार मेरी निमन्त्रण की ध्वनिमयी चेष्टाओ से कही जग न पडे, अत वह मौन निमन्त्रण देता है।

२—सघन ...... मौन—शब्दार्थ—सघन=गाढे। भीमाकाश=भीषण आकार वाला आकाश। तमसाकार=अन्धकार पूर्ण। दीर्घ=लम्बी-लम्बी। समीर=पवन। प्रखर=तीव्र। तपक=क्षणिक चमक। इगित=सकेत।

गाढे-गाढे बादलो से भरा हुआ भीषण आकार का आकाश जब गर्जना करता है, और जोरो की हवा चलने का शब्द होता है, मानो हवा स्वय नि श्वास भर रही हो। जब वर्षा ऋतु मे तीव्र-गति से वृष्टि होती है, तब लपक करके क्षण भर के लिए बिजली चमकती है और उसी रूप मे मुझे मौन सकेत कौन किया करता है ?

१—मेघो के दर्शन से वियोगी-हृदय तडपा करते हैं। प्रकृति मे भी दो वियोगी हृदयो का चित्रण कवि ने दिखाया है। समीर वियोगी प्रेमी का प्रतीक है जो मेघ दर्शन पर लम्बे-लम्बे नि श्वास भर रहा है और प्रेमिका (पावस धारा) भी आसुओ की झडी लगा रही है। इधर प्रस्तुत मे प्रेमिका रूप कवि का प्रियतम भी उसे इगित कर देता है। क्योकि समीर और पावसधार की वियोग दशा से उसे प्रेयसी की स्मृति की उद्दीपना होती है।

२—मेघाच्छन्न अन्धकार के बीच तडित का सकेत प्रेयसी की आशा और प्रसन्नता का द्योतक भी है। अन्धकार ही प्रिय मिलन का अच्छा अवसर होता है।

३—देख वसुधा ...... भेजता मौन—शब्दार्थ—वसुधा=पृथ्वी। मधु-मास=वसन्त। विधुर=दुखी। सोच्छ्वास=उच्छ्वास सहित। सौरभ=सुगध।

कवि की प्रियतमा कहती है कि भूमि जब यौवन-भार से दबी रहती है मधुमास उसके यौवन भार को देखकर मिलन की उत्कण्ठा से गूंज उठता है। वसन्त और वसुधा के इस प्रेममिलन मे वसुधा फूली नही समाती है। अब तक वह विधुरा थी, वियोगिनी थी, किन्तु वसन्त के समागम से उसके दुखी हृदय के कोमल-कोमल भाव फूलो के रूप मे फूट पडते है। वह अपने हृदय के भावो को प्रियतम के सम्मुख प्रकट कर ही देती है। वसन्त और वसुधा के मिलन का वह सौरभ, वसन्त ऋतु के भाव-कुसुमो की वह सुगन्ध मुझे भी उत्कण्ठित करती है। मुझे भी प्रतीत होता है कि इस सौरभ के रूप मे कोई प्रियतम सदेशा पहुँचा रहा है। पर स्पष्ट ज्ञान नही हो पता कि वह है कौन ?

१—वसन्त और वसुधा का यहा मानवीकरण करके कवि की आत्मा प्रिय मिलन की उद्दीपना प्राप्त करती है।

४—क्षुब्ध ...... बुलाता मौन—शब्दार्थ—क्षुब्ध=विलोडित। जल-निर्झर=ऊंची तरग। व्याकुल=अशान्त, चचल। बिखुरा=बिखरना।

जब हवा समुद्र कोविक्षुब्ध करके उसमे ऊंची ऊंची-तरग उठती है, उन तरगो को

गम-मय कर झागों मे भर देती है और फिर असंख्य बुलबुलों की चञ्चल सर्जना करती हुई थोड़ी देर बाद उन्हें बिखरा देती है, तब लहरों से अपने हाथ उठाकर मुझे कौन बुलाया करता है ?

१—रात और सिन्धु का यहाँ मानवीकरण है। चित्रण यों है कि हवा (प्रेमिका) सिन्धु (प्रेमी) के हृदय मे ऊँची-ऊँची प्रेम-तरग उठाती है, यहा तक कि सिन्धु का हृदय मथ जाता है। हवा और सिन्धु का यह प्रेम-मिलन उद्दाम रति की तृप्ति देकर पुन शान्त हो जाता है। सिन्धु का जोश असंख्य झाग और असंख्य बुलबुलों के रूप मे उठकर हवा से तृप्ति प्राप्त कर के ठण्डा पड जाता है। फिर सिन्धु मे केवल छोटी-छोटी तरगें ही असीम तृप्ति के रूप मे अवशिष्ट रह जाती हैं। सिन्धु और हवा की यह उद्दाम प्रेम-क्रीड़ा कवि के प्रियतम को उद्दीपना एव उत्कण्ठा प्रदान करती है और वह अपनी प्रियतमा को हाथ पसार कर बुलाया करता है।

५—स्वर्णसुख .. मेरे मौन—शब्दार्थ—स्वर्ग सुख=ऐश्वर्य का आनन्द और सुवर्ण-सी आभा आनन्द। श्री=शोभा। सौरभ=सुगन्ध। बोर=डुबाना। अलस=आलस्यपूर्ण। भोर=प्रभात।

यहाँ प्रभात का चित्रण है। जब प्रभात की वेला समस्त विश्व को सुवर्ण-सी रगीन आभा मे सुख, सौन्दर्य और सुगन्धि के समुद्र मे निमग्न कर देती है और जब पक्षियों की कलकल ध्वनि आकाश, दिग्दिगन्त तक व्याप्त होकर मानो पृथ्वी और आकाश का सगम करा देती है, तब मैं भी अपने आलस्यपूर्ण पलक सम्पुटों को खुलते हुए पाती हूँ। मेरे पलक पुटों को न जाने प्रभात वेला मे कौन खोल दिया करता है।

१—"भूनभ के छोर मिलने" मे व्यञ्जना यह है कि पृथ्वी मे इतना सुख, सौरभ और श्री भर जाती है कि स्वर्ग और पृथ्वी के बीच कोई वैषम्य नही रह जाता है और वे समानभाव से परस्पर मिले हुए प्रतीत होते हैं, उनमे ऐक्य-सा स्थापित हो जाता है।

२—'भोर, विश्व, हिलोर, भू, नभ' इन सब का यहा मानवीकरण है। प्रेम के महामिलन के दो दृश्य यहाँ प्रस्तुत किये हैं। एक ओर भोर (प्रेमिका की प्रतीक) विश्व (प्रेमी का प्रतीक) को असीम आनन्द, तृप्ति, सौन्दर्य, सौरभ सब कुछ प्रदान कर रही है। दूसरी ओर भू (प्रेमिका की प्रतीक) और नभ (प्रेमी का प्रतीक), दोनों का समागम हो रहा है। भू और नभ का सयोग करा देने वाली एक सफल दूती के रूप मे यहाँ हिलोर का चित्रण है। जब समस्त प्रकृति मे ऐसा अनन्त महा मिलन हो रहा है तब कवि की प्रेमिका भी उत्सुक हो उठती है। उसका रहस्यमय प्रेमी उसकी भी आँखे खोल देता है। मानो सकेत करता है कि इस महा-मिलन की वेला मे तुम और मैं ही क्यों अलग रहें ?

६—तुमुल तम .. तब मौन—शब्दार्थ—तुमुल=घोर। एकाकार=समान आकृति वाला। भी=भयभीत। तन्द्रा=आलस्य। खद्योत=जुगनू।

रात के समय जब अन्धकार ऐसा गाढा व्याप्त हो जाता है कि सारा जगत

एक सा अन्धकारमय बन जाता है और एक साथ निद्रा मे ऊँघता रहता है, जब उस गाढ़े अन्धकार से भरे मौन वातावरण मे झिल्ली की झनकार शान्ति भङ्ग करती रहती है, मानो झिल्ली अन्धेरे और चुप्पी से भयभीत होकर चिल्ला रहा हो। उस समय जुगुनू जगमगाते रहते थे। मानो घनी रात मे प्रिय मिलन को जाती हुई मेरे पथ-प्रदर्शन के लिए कोई प्रकाश कर रहा हो।

१—यहाँ प्रियतमा का चित्रण रात्रि-अभिसारिका के रूप मे किया गया है। प्रियतमा निविड अन्धकार मे प्रियतम से मिलने जा रही है। जुगुनुओ का प्रकाश उसका पथ प्रदर्शन कर रहा है।

२—घने अन्धकार मे जुगुनुओ का वातावरण यह भी ध्वनित करता है कि सारा विश्व दुःख, निराशा और अज्ञान मे डूबा है। परन्तु कवि को प्रकृति से अपने जीवन मे कुछ आशा एव ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता है।

७—कनकछाया .... दृग मौन—शब्दार्थ—कनकछाया=प्रभात की स्वर्ण प्रभा। सकाल=उचित समय पर। सुरभि पीडित=सुगन्धि से मस्त। मधुप=भौंरे।

जब प्रभात की सुवर्ण-छवि मे कलिका अपने हृदय के द्वार खोल कर खिल पडती है और भौंरो के बालक सुगन्ध से व्याकुल होकर कलिका का रस लेने के लिए इतना तडप उठते हैं कि उनकी तडपन गुञ्जार के रूप मे व्यक्त हो जाती है, वे स्वय भी गुञ्जारमय बन जाते है, तब कलिका भी उन भ्रमर किशोरो का प्रेम देखकर द्रवित हो पडती है। मकरन्द-बिन्दु के रूप मे अपने द्रवित हृदय के प्रेम को ढुलका देती है।

कवि की प्रेमिका कहती है कि मेरे प्रियतम भी ओस के रूप मे द्रवित होकर मेरा आह्वान करते प्रतीत होते है और मेरी आँखे उधर खीच लेते है।

१—यहाँ कलिका का नवयौवना बालिका के रूप मे और भ्रमर-बालो का प्रेमी किशोरो के रूप मे चित्रण किया गया है। उनके यौवनोचित प्रेम व्यापारो मे उद्दीपित होकर कवि का प्रियतम भी उसे अपना द्रवित हृदय दिखाकर रसपान के लिए निमन्त्रित कर रहा है।

८—विछा .... जग मे मौन—शब्दार्थ—सुवर्ण अवसान=सोने की आभापूर्ण अन्त अर्थात् सन्ध्या। श्रमित=थका माँदी। छायाजग=स्वप्न।

जब प्रकृति दिन भर नाना कर्मो का बोझ बिछाकर सन्ध्या काल को उसे सुवर्ण का अवसान प्रदान करती है। दिन भर मनुष्य विविध कार्य-कलापो का जाल बिछाते हैं, परिश्रम करते हैं और सन्ध्याकाल को जब सोने की सी आभा आकाश मे फैलती है तब सब कार्यो को बन्द कर दिया करते है। इस प्रकार विश्व प्रकृति मानो थक कर, चूर होकर सुनसान रात्रि मे शय्या पर विश्राम करती है अपने व्याकुल प्राणो को जुडाती है। कवि कहता है कि निद्रावस्था मे मुझे स्वप्न के ससार मे कौन घुमाया करता है?

१—यहाँ कवि स्वय प्रकृतिमय बनकर प्रियतमा बन जाता है। प्रथम दो

पंक्तियों में दिवस को एक मजदूर के रूप में और प्रेमिका की प्रतीक प्रकृति को स्वामिनी के रूप में चित्रित किया गया है। प्रकृति दिवस (मजदूर) द्वारा बड़े-बड़े कार्यों को करवाती है और अन्त में उसे मजदूरी के रूप में सुवर्ण देकर विदा करती है। वह स्वयं भी कार्य का निरीक्षण और प्रबन्ध करते-करते थक कर चूर हो जाती है और रात में विश्राम करने लग जाती है। स्वप्न में उसका प्रियतम उसे धुंधली-धुंधली रंगीन दुनियाँ दिखाता है।

९—न जाने . . . . हो कौन—शब्दार्थ—छविमान=सौन्दर्यशाली।

कौतूहल से भरा कवि नहीं जानता है कि उसका प्रियतम कौन है। किन्तु उसके विविध संकेतों से वह इतना अवश्य अनुमान कर लेता है कि वह बहुत सौन्दर्यशाली है। अतः प्रियतमा के रूप में वह कहता है कि हे सौन्दर्यशाली प्रिय! न मालूम तुम कौन हो? मुझको एक भोली-भाली अनजान बालिका समझ कर तुम मुझे ऐसा मार्ग दिखाते हो जिससे मैं अब तक अपरिचित हूँ। उस ज्ञान और प्रकाश के मार्ग पर तत्पर करने के पूर्व तुम मुझ में नव जीवन बन कर संचार कर दिया करते हो। मेरे रोम-रोम में संगीत भर देते हो। मेरे दुख और सुख में तुम ही मेरे साथी हो, पर रहते सदा मौन ही हो, संकेतमयी ही तुम्हारी भाषा है। मैं नहीं कह सकती हूँ कि तुम कौन हो? मैं जानने को बहुत उत्सुक हूँ।

१—यहाँ बताया गया है कि वह अनन्त सत् चित् सुखात्मक ब्रह्म ज्ञान, आनन्द और सौन्दर्य का अक्षय कोष है, मानव अल्पज्ञ और अबोध है। प्रकृति के विविध उपादान और उनके अद्भुत चमत्कार मानव को ज्ञान और आनन्द की ओर ले जाया करते हैं। जैसे उपनिषदों में कहा है—

"तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मामृतंगमय। असतो मा सद्गमय।"

अर्थात् हे सर्वान्तर्यामी परमात्मन्! मुझे अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलो। मुझे मृत्यु से अमरत्व की ओर ले चलो और मुझे असत् से सत्य की ओर ले चलो।

रहस्यवादी माधुर्य भाव के चोले में आत्मा और परमात्मा के स्वरूप और व्यापारों का काव्यमय-प्रतिपादन इस पूरी कविता में किया गया है।

१४—अनित्य जग

अवतरणिका—पल्लव में "परिवर्तन" शीर्षक कविता बहुत लम्बी है। उसी को प्रस्तुत पुस्तक में तीन शीर्षकों में अलग-अलग विभक्त कर दिया गया है—"अनित्य जग, परिवर्तन और नित्य जग"। इस कविता में कवि जीवन और जगत् के नाना रूपों में क्षण भंगुरता का चित्र उपस्थित करता है। वर्तमान और भूत की तुलनात्मक विवेचना से यह सिद्ध करता है कि जगत् और जीवन के कण-कण में नश्वरता है। यद्यपि समस्त विचारधारा भारतीय दर्शन की आधारशिला पर आधारित है, फिर भी

उस सिद्धान्त को जीवन और जगत् के विशिष्ट-विशिष्ट प्रसगो का चयन कर के उसका काव्यमय प्रतिपादन करना कवि की अपनी मौलिकता है। भले ही कवि के जीवन मे भी अनेकानेक घात-प्रतिघात, निराशा और कटुतायें आई हो और उससे ये सब स्वानुभूत परिणाम प्राप्त किये हो, फिर भी उसके वैयक्तिक अनुभव समष्टिगत जीवन की सत्यता वन जाते हैं। प्रतीत होता है कि कवि जगत् और जीवन के अन्दर स्वय वैठकर यथार्थता को खोलकर हमारे सम्मुख रख रहा है।

१—आज हाहाकार—शब्दार्थ—मधुमास=वसन्त ऋतु और यौवन। शिशिर=शिशिर ऋतु और वृद्धावस्था। गुजित डाल=भौरो की गुजार से भरी शाखा और सुख स्फूर्ति और नव जीवन से पूर्ण यौवन का समय। अकिञ्चनता=दरिद्रता, दीनतायें। उद्गार=भावनायें, कल्पनायें और वाढ। कराल=भयङ्कर। सोने का ससार=सुवर्णमयी आभा की राशि और सुवर्ण का वैभव। कगाल=अस्थि पजर। कच=वाल। व्याल=सर्प।

कवि कहता है कि जो वसन्त सौरभ से भरा था, जिसमे फूलो की वहार थी और उनकी महक सर्वत्र व्याप्त थी, आज वही शिशिर ऋतु मे परिणत हो गया है। वसन्त वीत चुका है उसके स्थान पर शिशिर ऋतु आ पहुँची है जिसमे रूखी सासे हैं। पत्ते झड गये है, रुक्ष हवा चल रही है, ओस से सब फूल मुरझा कर जल गये हैं। वसन्त ऋतु मे 'जो शाखा भौरो के गुजार से गूंज रही थी और फूलो से ऐसी लदी थी कि वह झुकी जा रही थी। लगता था कि कोई नारी यौवन के भार से झुकी जा रही हो। किन्तु वसन्त के वीतने पर जव शिशिर ऋतु आती है तव पतझड हो जाता है।' उससे फूलो का वैभव नष्ट हो जाता है वह तव अकिञ्चन बन जाती है, रूखी और ठण्डी हवा के झोको से कापने लग जाती है। उसके लिए अपना जीवन भी भार सा प्रतीत होने लग जाता है। वर्षा ऋतु मे जो नद उमड-उमड कर वहा करते थे आज उनका पानी सूख गया है, केवल उस अल्हड प्रवाह के चिह्न मात्र शेष रह गये हैं जो विकराल दिखाई पड रहे हैं। प्रातःकाल का सुवर्ण का ससार सन्ध्या की लपट जला दिया करती है। कितनी और कैसी क्षण भगुरता इस विश्व की है?

मानव-जीवन मे भी इसी क्षणभगुरता के दर्शन होते हैं। यौवन अवस्था मे शरीर के प्रत्येक अङ्ग-प्रत्यङ्ग नवीन रङ्ग से उभर जाया करते है, मानो जीवन के वसन्त मे फूलो की वहार आ गई हो। परन्तु वृद्धावस्था आने पर यौवन के वे रग-उभार सब विलीन हो जाते हैं और केवल शेष रह जाते है हड्डियो के हिलते हुए ककाल। यह है मानव की नश्वरता। यौवन मे जिस नारी के केश काले चिकने रहते थे और युवको के हृदयो को काले सापो की भाति-डसने को तत्पर रहते थे, एक दिन उनका सौन्दर्य भी विलीन हो जाता है और वे तालाव की काई की भाति साप की सूखी कैंचुली की भांति और फूले काम की भाति आकर्षण हीन वन जाते हैं। नारी का वह मदमाता यौवन, वह फूटता हुआ सौन्दर्य नव बुद्द मया शेष रह जाता है। इस प्रकार सभी के दो-चार दिन ही आनन्द और प्रसन्नता मे गुजा

करते हैं फिर जीवन में सब कुछ दुख-दैन्य और जीर्ण-शीर्णता में परिवर्तन हो जाता है।

१—प्रथम दस पंक्तियों में प्रकृति की नश्वरता का चित्रण प्रधान है और मानव-जीवन का संकेत-मात्र है। परन्तु अंतिम पंक्तियों में मानव-जीवन की नश्वरता का चित्रण प्रधान है और प्रकृति का उनके उपादनों में भी मानवीकरण किया गया। "सूनी साँस भरना, यौवन के भार से झुकना, सिहर उठना, जीवन भार होना, उद्गार और जला देना" ये सभी प्रयोग मानव-व्यापार के द्योतक हैं।

२—आज बचपन मूल—शब्दार्थ—गात=शरीर। जरा=बुढ़ापा। प्रणय=प्रेम। अधर=होंठ। नयनों का नीर=आँसू।

बचपन का जो कोमल शरीर था वह वृद्धावस्था में ऐसे मुरझा जाता है जैसा वसन्त का कोमल पल्लव पतझड़ में पीला पड़ जाता है। दो चार दिन के लिए आनन्द-प्रद चाँदनी की रात होती है फिर अँधेरी रात हो जाया करती है।

दो प्रेमियों के वियुक्त हो जाने पर उनका जीवन शोकातुर हो जाया करता है। फूल की भाँति खिले हुए उनके रक्तिम गालों को आँसू मुरझा और झुलसा देते हैं, जैसे खिले फूलों को शिशिर की ओस झुलसा कर सुखा देती है। दोनों प्रेमी जब प्रणय के चुम्बन में अधीर रहते हैं, चुम्बन की पूर्ण परितृप्त पाते भी नहीं कि उनका शीघ्र वियोग हो जाता है और वह वियोग भी ऐसा अनन्त काल तक का होता है कि उनके अधर एक दूसरे के अधरों को ललचाया करते हैं। प्रतीत ऐसा होने लगता है कि उनके अधरों की परस्पर कभी भेंट हुई ही न हो।

३—मृदुल होठों का कल्प अपार—शब्दार्थ—हिम जल हास=ओस रूपी हँसी। निःश्वास समीर=निःश्वास रूपी गरम हवा। शरदाकाश=शरद ऋतु का निर्मल आकाश। विधुर=दुःखदायी। अधर मधुर=होंठों की मधुरता में पूर्ण। कल्प=अनन्त अवधि।

सुख और आनन्द के दिनों में होंठों की हँसी फूलों के ओस की भाँति विशद और उज्ज्वल रहती थी। परन्तु दुख और वियोग के दिनों में वह उज्ज्वल हँसी निःश्वासों की उष्णता से सूख जाया करती है। जैसे प्रभात की चमकती ओस को लू के झोंके सुखा जाते हैं। जो भौंह शरद के आकाश के समान निर्मल रहते थे, दुख और वियोग के दिनों में चिन्ता और विषाद के काले काले बादल उन्हें घेर लिया करते हैं। उनकी निर्मलता और प्रफुल्लता विलीन हो जाती है। प्रेमियों के जीवन में वियोग बड़ा कष्ट-प्रद होता है जो शून्य श्वासों से भरा रहता है। वह शीघ्र ही अधरों के मधुर संयोग को छुड़ा दिया करता है। क्योंकि इस जीवन में मिलन के क्षण इने गिने दो चार ही होते हैं। परन्तु विरह की अवधि बहुत लम्बी प्रतीत होती है। वह अवधि एक कल्प की भाँति लम्बी प्रतीत होती है। जीवन में सुख ही सापेक्ष है और दुख की अपरिमित।

४—अरे वे हाय—शब्दार्थ—अपलक=निर्निमेष। निस्सार=विफल। उठे रोंये=रोमांच।

१—अहे . पतन—शब्दार्थ—ताण्डव नर्तन=शङ्कर का प्रलयकालिक नृत्य। विवर्तन=उलट फेर। नयनोन्मीलन=आँखो का खोलना। उत्थान=उन्नति या अभ्युदय।

परिवर्तन को साक्षात् सम्बोधित करते हुए कवि कहता है कि ओ परिवर्तन ! तुम बहुत निष्ठुर हो, ससार का उलट फेर करके करुणा उत्पन्न कर देने वाला तुम्हारा ही ताण्डव नृत्य है। जब तुम अपनी आँखें खोलते और बन्द करते हो तो समस्त विश्व मे उत्थान-पतन होने लग जाते हैं।

१—यहाँ परिवर्तन का साङ्केतिक चित्रण प्रलयकारी शङ्कर के रूप मे किया गया है। शङ्कर भगवान सहार शक्ति के प्रतीक देव माने जाते हैं, प्रलयकाल मे वे ताण्डव-नृत्य किया करते हैं और उसी समय वे अपनी तृतीय आग्नेय आँख भी खोला करते हैं। कामायनी मे भी ऐसा ही भाव है।

२—अहे दिङ्मण्डल—शब्दार्थ—वासुकि=सर्पराज का नाम। लक्ष=लाखो। अलक्षित=न दिखाई देने वाले। निरन्तर=लगातार। विक्षत=विदीर्ण, फटा हुआ। वक्ष स्थल=छाती। फेनोच्छ्वसित=झाग से भरे उच्छ्वास। स्फीत=बडी-बडी। घनाकार=चक्राकार, गोल रूप मे, और बादलो के आकारवाला। गरल=विष। कञ्चुक=कैंचुली। कल्पान्तर=एक सृष्टि के प्रलय के बाद दूसरी सृष्टि की उत्पत्ति, एक कल्प ब्रह्मा का दिन। विवर=बिल। वक्र=टेढ़ा। कुण्डल=कुण्डली बनाकर बैठने का आकार। दिङ्मण्डल=दिशाओ का गोलाकार मण्डल। फुन्कार=फुकारें। अम्बर=वस्त्र और आकाश।

अवतरणिका—यहाँ वासुकि नाग के रूप मे परिवर्तन का चित्रण किया गया है। ओ परिवर्तन ! तुम सहस्रफनो वाले वासुकि नाग हो। तुम्हारे पैर भी लाखो हैं, पर वे किसी को स्पष्ट दिखाई नही देते। तुम उन लाखो और न दिखाई देने वाले पैरो के चिह्न लगातार पृथ्वी की छाती के ऊपर छोडते जा रहे हो। तुम्हारी इस निरन्तर क्रिया से पृथ्वी की छाती क्षत विक्षत हो गई है। तुम भयङ्कर और फूली हुई फुङ्कारे छोडते चले जाते हो। तुम्हारे श्वास-प्रश्वास भी विषैले झाग से भरे हुए रहते हैं। तुम्हारे फुंकारो के प्रबल वेग से ही मानो पृथ्वी के ऊपर का आकाश मण्डल निरन्तर घूमता रहता है। समस्त ग्रह नक्षत्रो से भरा सौरमण्डल मानो तुम्हारे फुकारो के वेग से घूमा करता है। आकाश मे जब प्रलय घटायें घिरती हैं, वे मानो तुम्हारी झाग भरी उच्छ्वास की फुकारो का सघन और गाढा स्वरूप बनकर बादल बन जाती है। प्रलय-घटायें जब उमड-घुमड कर आती है तब लगता है कि सारा पृथ्वी के ऊपर का आकाश ही घूम रहा हो और वह भी तुम्हारे फुकारो के प्रबल वेग के कारण ही बेचारी नारी रूपी पृथ्वी (जगती) को जब तुम काटने दौडते हो, तब अपनी भयङ्कर फुकार पहले उसपर छोडते हो, उसके वेग से जगती नारी का वस्त्र आकाश से उडता हुआ फहरा पडता है। प्रलयकालिक मँडराते हुये बादल मानो जगती का वह परिधान-वस्त्र है जिसे तुम्हारी फुकारो ने ऊपर उडा डाला है। तब असंख्य प्राणियो की मौत होने लगती है। तुम्हीं मानो अपने मौतरूपी जहरीले दाँत से जगती

के जीवनों को डस लिया करते हो। समस्त सृष्टि का इस प्रकार संहार हो जाता है और फिर से नयी सृष्टि की उत्पत्ति होने लगती है यही नूतन सृष्टि का पुन उदय मानो तुम्हारा केंचुली बदलना है। समस्त विश्व ही तुम्हारे रहने और छिपने का बिल है। दिशाओं की गोलाकार प्रतीति ही मानो तुम्हारा कुण्डली मारकर बैठना है। रेंगकर, फुंकार मारकर और डसकर तुम फिर से कुण्डली भरकर बिल मे छिप जाया करते हो।

१—इसमे साङ्गरूपक है। परिवर्तन ससार मे लाखों, करोडो रूपो मे आया करता है इसलिए इस भाव की व्यञ्जना के लिए "सहस्र फन और लक्ष चरण" का प्रयोग किया गया है। परिवर्तन स्वय एक भाव अथवा व्यापार है और रूपवान नही है। इसलिए उसके लिए अलक्षित विशेषण दिया गया है।

२—"चरण" पद मे श्लेष का सकेतार्थ भी है। एक तो इसका प्रसिद्ध अर्थ पैर है ही, दूसरे यह कर्म, गति (action) इस व्यापार वाचक अर्थ को भी बताता है जो परिवर्तन के पक्ष मे आन्वयित होगा। तुम्हारे चरण लक्ष और अलक्षित है, तुम्हारे कार्य सख्या मे लाखो होते हुए भी प्रकट रूप मे नही दिखाई देते हैं केवल उनके परिणाम (चिह्न) ही दिखाई पडते हैं।

"घनाकार" और "अम्बर" मे भी श्लेष के दोनो अर्थ व्याख्या मे स्पष्ट कर दिये गये है।

३—"जगती" का मानवीकरण श्लेष के द्वितीय पक्ष मे होगा।

४—व्यापार अथवा व्यक्तिवाचक "मृत्यु" का उपमान अचेतन "दन्त" किया है। साकार "कञ्चुक" का उपमान अमूर्त "कल्पाकार" कल्पान्तर है। ये सब प्रयोग छायावादी प्रवृत्ति की जानकारी के लिए सहायक हैं ये सब विशेषण या अङ्ग वासुकि के है जो स्वय भी व्यापारात्मक परिवर्तन का साकार उपमान है।

३—अहे दुर्जेय धरातल—शब्दार्थ—दुर्जेय=जीते जाने मे असमर्थ। विश्वजित्= विश्व पर विजय पाने वाला। नृशस=क्रूर, हिंसक। अनियन्त्रित=बे रोक-टोक। सस्तृति=ससार। पदमर्दित=पैरो से कुचला हुआ। प्रतिमायें=मूर्तियाँ। चिर सचित =दीर्घकाल मे इकट्ठा किया हुआ। आधि=मानसिक पीडा। निरकुश=बाधा हीन, बे लगाम। पदाघात=पैरो की चोट। विह्वल=व्याकुल। पद दलित=पैरो से कुचला हुआ।

अवतरणिका—ऐतिहासिक युद्धो और आक्रमणो का समष्टि रूप ही मानो परिवर्तन नाम का शासक है जिसके अनेक अवयव विशिष्ट युद्ध अथवा सहारकारक घटनायें हैं। एक आक्रमणकारी राजा के रूप मे यहाँ परिवर्तन का वर्णन किया गया है।

तुम समस्त विश्व पर सदा विजय प्राप्त करते रहे हो, पर तुम्हे अब तक कोई नही जीत सका है, अत तुम दुर्जेय हो और विश्वजित् हो। तुम्हारा उत्थान ऐसा प्रभावशाली और प्रतापी है कि तुम्हारे शासन मे उतरे तने सैकडो इन्द्र और सम्राट् अपना मस्तक झुका देते हैं। जिस प्रकार चलते हुए रथ के पहियो से उडे हुए धूल कण आकाश का चिह्न होकर इसके प्रचण्ड वेग से उनी के साथ पुनः चले जाते हैं, इसी

प्रकार सैकडो भाग्य (भाग्यवान् और वैभव सम्पन्न व्यक्ति) अनाथ होकर तुम्हारे रथ के पहियो की लपेट मे आकर घूमते रहते है। तुम ऐसे प्रबल प्रतापी आक्रमण-कारी हो कि मानव सम्राट् तो क्या, बडे-बडे इन्द्र, महेन्द्र, देवता भी तुम्हारे रथ-चक्र की गति मे धूलि-कण का-सा ही अस्तित्व रखते है।

एक क्रूर और अत्याचारी की भाँति तुम ससार पर बे रोकटोक आक्रमण कर डालते हो और सृष्टि को मसलकर पैरो तले रौंद दिया करते हो। जिस भूभाग मे तुम्हारा आक्रमण होता है वहा के ऊँचे-ऊँचे भवनो को ध्वस्त विध्वस्त कर देते हो और नगरो को नग्न बना डालते हो, मन्दिरो की प्रतिमायें तोड-फोड देते हो, वहाँ का वैभव, कला-कौशल आदि जो कुछ वहाँ के मानव समाज के दीर्घकालीन प्रयत्न से सञ्चित रहता है, तुम हरण कर लिया करते हो। आधि, व्याधि, अति वृष्टि, आँधी, तूफान, महामारी, वह्नि, बाढ़ भूकम्प आदि दैवी उत्पात तुम्हारी सेना के सचालक हैं। तुम्हारे ऊपर किसी का अकुश है ही नही। तुम जब अपनी सेना को आज्ञा देते हो तो उनके सम्मिलित पदाघात से पृथ्वी-तल थर-थर काँप उठता है और विह्वल हो उठता है। थाली मे रखा हुआ पारा जैसे टलमल हिल उठता है उसी भाँति उस समय पृथ्वी की स्थिति रहती है।

१—इस छन्द से हमारे सामने भारत पर होने वाले अनेक आक्रमणो का चित्र प्रत्यक्ष हो जाता है ? और युद्ध कालिक प्रजा की तथा तात्कालिक ज्ञान, विज्ञान, सस्कृति एव साहित्य की दुर्गति का पूरा परिचय मिल जाता है।

२—"**भाग्य**" का लाक्षणिक अर्थ भाग्यवान् हो जाता है। रथ चक्र का अर्थ परिवर्तन के पक्ष मे क्रमश घटित होने वाली निरन्तर गति होगा।

३—"**पदमर्दित पदाघात और पद दलित**" इन पदो का पुनरुक्त प्रयोग भावा-वेश के प्रचण्ड मे आकर किया गया है जो प्रभाव की दृष्टि मे रुचिवर्धक है।

४—"**टलमल उठना**" मुहावरा पारे की चचलता का भाव उपस्थित करता है।

४—जग का स्थल—शब्दार्थ—अविरत=निरन्तर। हृत्कम्पन=हृदय की धडकन। भयसूचन=भय की सूचना देना। विपुल वासना-विकच=अनन्त वासनाओं या आकाक्षाओं की पूर्णता ही जिसका विकास है। मानस शत दल=मान सरोवर का बडा कमल और मन रूपी कमल। कालकृमि=काल रूपी कीडा। स्वेदसिंचित=पसीने का कमाया हुआ। स्वर्ण शस्यदल=परिपक्व होने पर सुवर्ण-सी पीली खेती। (१) धन, वैभव रूपी खेती। वर्षोपल=ओले। वांछित=इच्छित वृष्टि। फल=खेती की भांति परिश्रम से उपार्जित परिणाम। ध्वनि-स्पन्दित=गर्जन और गतिपूर्ण। नैश गगन=रात का आकाश। समाधि-स्थल= विश्राम गृह।

कवि कहता है कि ससार के प्राणियो के हृदय निरन्तर गतिशील रहा करते हैं, मानो हृदयो की वह निरन्तर कँप-कँपी तुम्हारे भय के कारण ही होती रहती है। समस्त विश्व के प्राणियो की पलकें जब लगातार लग जाती हैं, मानो वही पलको का लगना तुम्हारे आगमन का सकेत होता है। जीवित दशा मे तुम्हारे भय ने मानो

प्राणियों के हृदयों में गति रहा करती है और आतंकित भय के प्रत्यक्ष आगमन पर सबकी पलकें चुपचाप ढक जाती है।

संसार के प्राणियों के हृदयों में नाना प्रकार की कामनायें या आकांक्षायें भरी रहती हैं, उन कामनाओं का अनन्त विकास उत्तरोत्तर बढ़ता ही चला जाता है, उन्ही के कारण जीव संसार में निरन्तर संघर्ष और कर्म करता चला जाता है और सफलता एवं इष्टफल प्राप्त करके सुख का अनुभव करता है। परन्तु, ओ परिवर्तन ! तुम उन इच्छाओं को सफलता प्रदान नहीं करने देते, तुम्हारा प्रयत्न सदा मानव-आकांक्षाओं को भंग करते रहना ही रहता है। तुम मानव-संघर्षों और कर्मों के साथ-साथ बाधक होकर छाया की भांति नित्य चिपके रहते हो और उन्हें पूर्ण होने से पहिले ही प्रच्छन्न रूप से विफल करते जाते हो। प्रतीत ऐसा होता है कि मान सरोवर में एक सहस्र-दल कमल खिला हो और एक कुटिल कीड़ा उसके भीतर घुस कर क्षण-क्षण में उसे कुरेदते-कुरेदते छान रहा हो। विश्व कितनी ही शताब्दियों पश्चात् कला-कौशल, विज्ञान को बड़े परिश्रम से अर्जन करता है। कोई भी सभ्यता एवं संस्कृति किसी देश या जाति की पसीने की कमाई होती है, और वह कृषकों की पकी-पकाई खेती की भांति लहलहाती रहती है। परन्तु तुम विश्व को उस पसीने की कमाई को ऐसे दलमल दिया करते हो जैसे कृषक की खेती को ओले नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं। तुम पकी पकाई खेती पर ओले बरसाने वाले मेघ के समान हो। जगती का दिङ्-मण्डल जिस प्रकार मेघों की गर्जना से सदा स्पन्दित होता है उसी भांति तुम भी उसे कम्पित करते रहते हो। रात्रि काल का समस्त आकाश ही मानो तुम्हारा समाधि-स्थल है। जैसे मेघों का निवास स्थान आकाश है उसी भांति तुम्हारा भी। मेघ तो देखे भी जाते हैं पर तुम दिखाई नहीं देते हो क्योंकि रात्रि के अन्धकारमय आकाश में तुम मानो रहते हो। अतः तुम्हें कोई देख भी नहीं सकता है।

१—यहाँ मेघ का सांगरूपक है। किसी प्रति में 'सचित' पाठ है और किसी में "सिंचित" दोनों ही ठीक है। सिंचित होने पर—पसीने से सींची हुई खेती होगा।

२—'वाञ्छित कृषिफल और स्वर्ण सस्य दल" इन दोनों में से एक को हटा दिया जाता तो कोई हानि न थी। दोनों का एक ही भाव है।

<u>५—काल का</u> <u>गुरु गर्जन</u>—शब्दार्थ—अकरुण=निष्ठुर। भृकुटि विलास=भौंहों का नचाना। अश्रुपूर्ण=अत्यन्त करुणा उत्पन्न कर देने वाला। कटाक्ष=वक्र दृष्टि। निसर्ग=प्रकृति। अभ्रध्वज=जिनके शिखरों पर बादल फहराती हुई ध्वजाओं की भांति दिखाई देते हैं। गगन चुम्बी सौध=महल, प्रासाद। भूधर=ऊंचे ऊंचे गुम्बद। मेघाडम्बर=मेघ की भांति क्षण स्थायी। दिग्भू=दिशा और पृथ्वी।

सब प्राणी देखते-देखते मरने लगते हैं, तब यह निर्मम व्यापार मानो तुम्हारे लिए हँसी-खेल और आमोद-प्रमोद हुआ करता। सृष्टि से लेकर अब तक का इतिहास कितना करुणापूर्ण है? विश्व का वह रुला देने वाला इतिहास तुम्हारी ही तो कथा है। जब तुम अपनी एक क्रूर तिरछी दृष्टि डालते हो तो ब्रह्माण्ड भर मे महाप्रलय मच जाता है। तब समस्त प्रकृति और सृष्टि मे घोर युद्ध छिड जाता है। उस समय बडे-बडे गगन चुम्बी प्रासाद, अट्टालिकायें और पर्वतो के ऊँचे-ऊँचे शिखर धराशायी हो जाते है। सारे वैभवसम्पन्न साम्राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो जाते है। प्रतीत ऐसा होता है कि भूमि के साम्राज्यो का वह प्रचुर वैभव मेघो के जीवन की भाति क्षणिक है। जैसे आकाश के मेघ हवा के एक झोके से तितर-बितर होकर अस्तित्व हीन हो जाते हैं उसी भाति भूमि के विशाल नगर धूलिसात हो जाया करते हैं। तुम्हारे एक रोयें के उठने से ही समस्त दिशाओ के छोर तक पृथ्वी मे भूकप आ जाता है। उस महाभूकम्प मे आकाश का नक्षत्र मण्डल कम्पित होकर ऐसे टूट टूट कर भूमि पर गिर पडता है जैसे प्रबल आँधी के वेग से वृक्ष के कम्पन से पक्षियो के अण्डे, बच्चे झड पडते हैं। उस महाप्रलय काल मे महासागर मथ-मथकर विक्षुब्ध हो उठता है और ऊँची-ऊँची लहरें अन्तरिक्ष मे नाचने लगती हैं। प्रतीत ऐसा होता है कि किसी सपेरे के इशारे से उसकी बीन पर मुग्ध होकर सर्पराज सैकडो झाग भरे फनो को उठाकर नाच रहा है। नृत्य कर चुकने के बाद वह दिशा रूपी पिटारी मे सिर नीचा करके छिप जाया करता है, प्रतीत होता है कि वह सर्प, सिर नीचा किये दिग्गज हो। प्रलय काल मे झझावात के आघातो से आकाश क्रदन करने लग जाता है।

६—जगत् की सुख शान्ति—शब्दार्थ—कातर=करुणा पूर्ण, भयपूर्ण। आक्राति=दु खो का आक्रमण। बधिर=बहरा। चतुर्दिक=चारो दिशायें।

ओ परिवर्तन तुम बहरे हो, ससार की सैकडो करुणाभरी चीत्कारें तुम्हारे कानो को सदा बेधती रहती हैं, परन्तु तुम पर कोई असर नही होता है, फिर भी तुम अपना सहार-कर्म किये चले जाते हो, तुम्हारा हृदय तो पत्थर की भाति कर्कश है, दुख दर्द से न वह पिघलता है और न उसमे दया के अंकुर उग सकते हैं। ससार की असंख्य आँसुओ की धारायें तुम्हारे पत्थर के हृदय को नित्य सीचा करती हैं। दु खी प्राणियो के हृदयो मे प्रतिक्षण सैकडो नि श्वास एकत्र होकर असीम आकाश मे घनीभूत होकर छा जाया करते हैं और चारो दिशाओ मे दुखो के आक्रमण बादलो की भाति उमड-घुमड कर आते हैं, जिस से ससार की सुख शान्ति ग्रस्त हो जाती है। तुम ससार की सुख शान्ति नष्ट कर देते हो।

१—यहा परिवर्तन का मानवीकरण एक क्रूर और पाषाण-हृदय व्यक्ति के रूप मे किया गया है। नि श्वासो का उपमेय बादल लुप्त है।

७—हाय री माया जाल—शब्दार्थ—भ्रान्ति=भ्रम। नश्वर=विनाशशील। विराम=विश्राम। सिंचन=पालन-पोषण। गर्वोन्नत=अभिमान मे ऊँचे उठे हुये।

हर्म्य=ऊँचे-ऊँचे भवन। मन्त्रोच्चार=वेदों का पाठ। उलूक=उल्लू। माया जाल=भ्रम पैदा करने वाला खेल जादू।

कवि कहता है कि मानव फिर भी सुख के लिए तड़पता रहता है और सुख फिर भी उसे प्राप्त नहीं हो पाता। वह कितना दुर्बल है? उसका भ्रम फिर भी उसका पीछा नहीं छोड़ता। मानव यह नहीं सोचता है कि इस नश्वर संसार में शान्ति कहाँ प्राप्त हो सकती है। सृष्टि का अर्थ ही अशान्ति है। जब तक संसार है तब तक अशान्ति बनी रहेगी। निरन्तर जीवन में संघर्ष करते जाना ही जीवन का स्वरूप है। यहाँ विश्राम और चैन की माँग लेना तो स्वप्न की भाँति काल्पनिक है। हम देखते हैं कि जहाँ एक सौ वर्ष तक सुन्दर नगर और उपवन थे वे ही प्रदेश एक सौ वर्ष पश्चात् निर्जन वन में परिणत हो जाया करते हैं। यह संसार तो सारहीन है। इसका सार बस इतना ही है कि उत्पत्ति होती है, कुछ काल तक उत्पन्न वस्तु टिकी रहती है और अन्त में उसका विनाश हो जाया करता है। इन तीन नित्य-नियमों से बँधा हुआ यह संसार है। हम देखते हैं कि आज जो बड़े-बड़े महल अभिमान से सिर ऊँचा किये खड़े हैं और जहाँ नित्य रत्नों की दीपावली रहा करती है, वैभव से परिपूर्ण हैं, निरन्तर जहाँ वेद पाठ होता रहता है, कल को वे ही प्रासाद भग्न खंडहर हो जाते हैं और उनमें उल्लू बसेरा बना लेते हैं। झिंगुरों की झनकार सुनाई पड़ती है। यह विशाल विश्व केवल रात और दिन की भाँति क्रमशः उत्पन्न और विलीन होता रहता है। इस विशाल विश्व का सृष्टि संहार का क्रम संक्षिप्त रूप में हम जीवन में प्रति दिन अनुभव करते रहते हैं। जब दिन होता है तब मानो संसार की सृष्टि हो जाती है और जब रात होती है तब हम निद्रित होकर सृष्टि के अभाव का दर्शन करते हैं हमारे लिए संसार तब कोई अस्तित्व नहीं रखता है। यह संसार उसी भाँति का एक खेल है जैसे हवा और मेघ का खेल हुआ करता है—कभी हवा की प्रबलता हुई तो मेघों का नाम निशान भी मिट जाता है और कभी बादलों से संसार छा जाता है।

१—सृजन, स्थिति, संहार ये तीन व्यापार भारतीय दार्शनिकों के प्रतिपादित हैं, निरुक्तकार इन्हीं तीनों को ६ रूपों में बताते हैं। १—जायते, २—अस्ति, ३—विपरिणमते, ४—वर्धते, ५—अपक्षीयते, ६—विनश्यति। जगत् की समस्त वस्तुएँ इन ६ भावों में बँधी हैं। इनमें से बीच के ४ भाव "अस्ति" के ही अन्तर्गत आ जाते हैं।

२—'दिवस निशि का यह विश्व विशाल' में बताया गया विचार विशुद्ध गीता के अन्तर्गत के एक श्लोक पर आधारित है, जैसे—

"अव्यक्ताद् व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्त संज्ञके॥

१६—नित्य जग

अवतरणिका—पूर्वोक्त दो कविताओं में कवि ने संसार को नश्वर और परिवर्तनशील रूप में देखा है। जगत् की नश्वरता एवं परिवर्तनशीलता से पाठक के

सब प्राणी देखते-देखते मरने लगते हैं, तब यह निर्मम व्यापार मानो तुम्हारे लिए हँसी-खेल और आमोद-प्रमोद हुआ करता। सृष्टि से लेकर अब तक का इतिहास कितना करुणापूर्ण है? विश्व का वह रुला देने वाला इतिहास तुम्हारी ही तो कथा है। जब तुम अपनी एक क्रूर तिरछी दृष्टि डालते हो तो ब्रह्माण्ड भर मे महाप्रलय मच जाता है। तब समस्त प्रकृति और सृष्टि मे घोर युद्ध छिड जाता है। उस समय बडे-बडे गगन चुम्बी प्रासाद, अट्टालिकायें और पर्वतो के ऊँचे-ऊँचे शिखर धराशायी हो जाते है। सारे वैभवसम्पन्न साम्राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो जाते है। प्रतीत ऐसा होता है कि भूमि के साम्राज्यो का वह प्रचुर वैभव मेघो के जीवन की भाति क्षणिक है। जैसे आकाश के मेघ हवा के एक झोके से तितर-बितर होकर अस्तित्व हीन हो जाते हैं उसी भाति भूमि के विशाल नगर धूलिसात हो जाया करते हैं। तुम्हारे एक रोयें के उठने से ही समस्त दिशाओ के छोर तक पृथ्वी मे भूकप आ जाता है। उस महाभूकम्प मे आकाश का नक्षत्र मण्डल कम्पित होकर ऐसे टूट-टूट कर भूमि पर गिर पडता है जैसे प्रबल आँधी के वेग से वृक्ष के कम्पन से पक्षियो के अण्डे, बच्चे झड पडते हैं। उस महाप्रलय काल मे महासागर मथ-मथकर विक्षुब्ध हो उठता है और ऊँची-ऊँची लहरें अन्तरिक्ष मे नाचने लगती हैं। प्रतीत ऐसा होता है कि किसी सपेरे के इशारे से उसकी बीन पर मुग्ध होकर सर्पराज सैकडो झाग भरे फनो को उठाकर नाच रहा है। नृत्य कर चुकने के बाद वह दिशा रूपी पिटारी मे सिर नीचा करके छिप जाया करता है, प्रतीत होता है कि वह सर्प, सिर नीचा किये दिग्गज हो। प्रलय काल मे झझावात के आघातो से आकाश क्रदन करने लग जाता है।

६—जगत् की　　सुख शान्ति—शब्दार्थ—कातर=करुणा पूर्ण, भयपूर्ण। आक्राति=दु खो का आक्रमण। बधिर=बहरा। चतुर्दिक=चारो दिशायें।

ओ परिवर्तन तुम बहरे हो, ससार की सैकडो करुणाभरी चीत्कारें तुम्हारे कानो को सदा बेधती रहती हैं, परन्तु तुम पर कोई असर नही होता है, फिर भी तुम अपना सहार-कर्म किये चले जाते हो, तुम्हारा हृदय तो पत्थर की भाति कर्कश है, दुख दर्द से न वह पिघलता है और न उसमे दया के अकुर उग सकते हैं। ससार की असख्य आँसुओ की धारायें तुम्हारे पत्थर के हृदय को नित्य सीचा करती हैं। दुखी प्राणियो के हृदयो मे प्रतिक्षण सैकडो नि श्वास एकत्र होकर असीम आकाश मे घनीभूत होकर छा जाया करते हैं और चारो दिशाओ मे दुखो के आक्रमण बादलो की भाति उमड-घुमड कर आते हैं, जिस मे ससार की सुख शान्ति ग्रस्त हो जाती है। तुम ससार की सुख शान्ति नष्ट कर देते हो।

१—यहा परिवर्तन का मानवीकरण एक क्रूर और पाषाण-हृदय व्यक्ति के रूप मे किया गया है। नि श्वासो का उपमेय बादल लुप्त है।

७—हाय री　" माया जाल—शब्दार्थ—भ्रान्ति=भ्रम। नश्वर=विनाशशील। विराम=विश्राम। सिंचन=पालन-पोषण। गर्वोन्नत=अभिमान मे ऊँचे उठे हुये।

हर्म्य = ऊँचे-ऊँचे भवन। मन्त्रोच्चार = वेदो का पाठ। उलूक = उल्लू। माया जाल = भ्रम पैदा करने वाला खेल जादू।

कवि कहता है कि मानव फिर भी सुख के लिए तड़पता रहता है और सुख फिर भी उसे प्राप्त नही हो पाता। वह कितना दुर्बल है ? उसका भ्रम फिर भी उसका पीछा नही छोडता। मानव यह नही सोचता है कि इस नश्वर समार मे शाति कहा प्राप्त हो सकती है। सृष्टि का अर्थ ही अशान्ति है। जब तक ससार है तब तक अशान्ति बनी रहेगी। निरतर जीवन मे सघर्ष करते जाना ही जीवन का स्वरूप है। यहाँ विश्राम और चैन की सांस लेना तो स्वप्न की भाति काल्पनिक है। हम देखते हैं कि जहाँ एक सौ वर्ष तक सुन्दर नगर और उपवन थे वे ही प्रदेश एक सौ वर्ष पश्चात् निर्जन वन में परिणत हो जाया करते हैं। यह ससार तो सारहीन है। इसका सार बस इतना ही है कि उत्पत्ति होती है, कुछ काल तक उत्पन्न वस्तु टिकी रहती है और अन्त मे उसका विनाश हो जाया करता है। इन तीन नित्य-नियमो से बँधा हुआ यह ससार है। हम देखते हैं कि आज जो बडे-बडे महल अभिमान से सिर ऊंचा किये खडे हैं और जहा नित्य रत्नो की दीपावली रहा करती है, वैभव से परिपूर्ण हैं, निरन्तर जहाँ वेद पाठ होता रहता है, कल को वे ही प्रासाद भग्न खडहर हो जाते है और उनमें उल्लू बसेरा बना लेते हैं। झिगुरो की झनकार सुनाई पडती है। यह विशाल विश्व केवल रात और दिन की भाति क्रमश उत्पन्न और विलीन होता रहता है। इस विशाल विश्व का सृष्टि सहार का क्रम सक्षिप्त रूप से हम जीवन मे प्रति दिन अनुभव करते रहते है। जब दिन होता है तब मानो ससार की सृष्टि हो जाती है और जब रात होती है तब हम निद्रित होकर सृष्टि के अभाव का दर्शन करते हैं, हमारे लिए ससार तब कोई अस्तित्व नही रखता है। यह ससार उसी भाति का एक खेल है जैसे हवा और मेघ का खेल हुआ करता है—कभी हवा की प्रबलता हुई तो मेघो का नाम निशान भी मिट जाता है और कभी बादलो का ससार छा जाता है।

१—सृजन, सिचन, सहार ये तीन व्यापार भारतीय दार्शनिको के प्रतिपादित है, निरुक्तकार इन्हीं तीनो को ६ रूपो मे बताते हैं। १—जायते, २—अस्ति, ३—विपरिणमते, ४—वर्धते, ५—अपक्षीयते, ६—विनश्यति। जगत् की समस्त वस्तुएँ इन ६ भावों से बँधी हैं। इनमे से बीच के ४ भाव "अस्ति" के ही अन्तर्गत आ जाते हैं।

२—"दिवश निशि का यह विश्व-विशाल" मे बताया गया विचार विशुद्ध गीता के अन्तर्गत के एक श्लोक पर आधारित है, जैसे—

"अव्यक्ताद् व्यक्तय. सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्त सज्ञके॥"

सम्मुख केवल निराशावादिता या विरक्ति ही झाँकने लगती है। उन दो कविताओ के प्रभाव से या तो पाठक जीवन को निराशामय हृदय से व्यतीत करने को उद्यत होता रहेगा या जीवन और जगत् के प्रति विरक्ति की भावना रखकर कर्मपथ से भागता जायेगा। कवि का उद्देश्य इस कविता मे मानव को आशावादिता का सम्बल देकर कर्मपथ की ओर प्रवृत्त करना है। इस ससार का वास्तविक स्वत्वपूर्ण विचार जगत् और जीवन को नित्य मान कर ही परिपूर्ण हो सकेगा। अत पूर्व की दो कविताएँ इस प्रस्तुत कविता की भूमिका थी, क्योकि इसमे कवि ने कुछ निश्चित परिणाम, सुझाव और कुछ हल प्रस्तुत किये हैं।

१—नित्य का अज्ञात—शब्दार्थ–विवर्तन=एक वस्तु के आकार का दूसरे आकार मे परिणत हो जाने की क्रिया। व्यावर्तन=उलट-पुलट कर पुन उसी रूप को धारण कर लेना। अन्वेषण=ढूढ-खोज। तत्वपूर्ण=सारभूत। दर्शन=यथार्थ-ज्ञान, वैज्ञानिकज्ञान। सैकत=रेत। अतिवात=हवा का तीव्र झोका। अज्ञात=चुप-चाप।

कवि कहता है कि नित्य वस्तु मे ऐसा अनित्य वर्तन लगा ही रहता है। ससार और जीवन तो नित्य वस्तु हैं, किन्तु उसकी परिवर्तनशीलता उसका नृत्य है जो क्षण स्थायी होता है और इस से जीवन और जगत् का नित्यता पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पडता है। ससार तो विवर्तन-स्वरूप या विपरिणामी है और कितने ही स्वरूप मे बदल कर पुन उसी रूप मे आजाता है। किन्तु उस विपरिणामी पदार्थ का विनाश कभी नही होता है, केवल उसका आकार ही बदलता है। ससार के स्वरूप का भले ही परिवर्तन हो जाय, परन्तु ससार पदार्थ तो नित्य ही रहेगा। भारतीय दर्शन मे विवर्तनवाद एक सिद्धात है जिसे दूसरे शब्दो मे विकासवाद या Evolution कह सकते हैं। इसका तात्पर्य है कि ससार की प्रत्येक वस्तु मे विकासात्मक परिवर्तन होना चला जाता है जो आवश्यक और अनिवार्य है, इसी कारण प्रत्येक पदार्थ का दूसरा स्वरूप बदलता जाता है। जैसे जल एक पदार्थ है, वही विवर्तन से बरफ का स्वरूप प्राप्त कर लेता है, कभी हाइड्रोजन और ऑक्सीजन गैसो के रूप मे आ जाता है, कभी ओले के रूप मे आ जाता है, कभी बादलो के रूप मे दिखाई पडता है और कभी पुन जल के रूप मे आ जाता है। यही जल-स्वरूप उस पदार्थ का नित्य, यथार्थ और मौलिक रूप है, बरफ, गैस, भाप, ओले आदि सब स्वरूप उसके विवर्तन दशा के स्वरूप हैं जो क्षणिक और अस्थायी हैं। इसलिए कवि का कहना है कि इस विश्व का तत्वपूर्ण दर्शन यही है कि हम अनित्य स्वरूपो मे छिपे हुये नित्य वस्तु की खोज करते रहे। ससार की प्रत्येक परिवर्तनशील वस्तुओ के भीतर नित्य रूप मे स्थित उस मूलभूत स्वरूप का अन्वेषण करें। अनित्य वस्तुओ मे नित्यवस्तु की ढूंढ करते रहे। बस इतना ही जगत् और जीवन सम्बन्धी यथार्थ दर्शन (Philosophy) है।

इसी विवर्तन के सिद्धान्त को कवि एक उदाहरण द्वारा प्रतिपादन करता है। वह कहता है कि जिसे हम ससार का सृष्टि होना और प्रलय होना कहते है ये दोनो स्वरूप तो ससार के विवर्तन के स्वरूप है, जैसे समुद्र की सतह मे एक बडी लहर

उठती है और उसमें असख्य बुलबुले उठ जाते है फिर वे सब एक-एक करके फूट जाया करते हैं, ठीक इसी भांति सृष्टि का उदय होता है, कितने ही ससार, असख्य लोक और ब्रह्माण्ड बन जाया करते हैं, फिर प्रलय काल मे विलीन हो जाते हैं। जल के बुद्‌बुदो की भाँति ससार का अनित्य विवर्तन होता है, परन्तु अन्त मे वह ससार अपने मूलतत्त्व मे उसी प्रकार परिणत हो जाता है जैसे बुलबुले अपने कारणभूत मूल-तत्त्व जल मे परिणत हो जाया करते हैं। कवि इसी बात को दूसरे दृष्टान्त से भी समझाता है। वह कहता है कि जिस प्रकार रेत के मैदानो मे आधी आती है तो एक स्थान पर रेत के टीले और दीवारे बन जाया करती है और फिर वही आँधी उन टीलो और दीवारो को एक झोंके मे उजाड दिया करती है। फिर से रेत का मैदान अपने मूल-रूप में आ जाता है। वे टीले और तट तो रेत के केवल विभिन्न-विभिन्न स्वरूप हुआ करते हैं जो क्षणिक होते हैं, किन्तु उनका मूलभूत रेत पदार्थ उनकी अपेक्षा नित्य है, अत वे क्षणिक स्वरूप पुन अपनी मूलावस्था मे आ जाया करते हैं।

१—इस छन्द मे भारतीय वेदना के जिस विवर्तन सिद्धान्त को कवि ने बताया है, वह गीता मे यो है—

"आब्रह्मा भुवनाल्लोकाः पुनरावर्तितोऽर्जुन"

अर्थात् हे अर्जुन ये समस्त लोक और भुवन पुनरावर्ती होते हैं। इनकी उत्पत्ति कुछ काल तक स्थिति और फिर विनाश इस विवर्तन से सब बन्धे हुए हैं। इन सब का मूलभूत कारण जो कभी क्षीण और व्यय नही होता है वह अव्यक्त ब्रह्म हैं जैसे—

"य स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति।
अव्यक्तो क्षर इत्युक्त स्तुमाहु परमा गतिम्॥"

अर्थात् समस्त चराचर के नाश होने पर भी जो अव्यय रहता है वह अक्षर ब्रह्म है, वही सब का ज्ञेय है, वही सबकी गति है। "अचिर मे चिर का अन्वेषण" से कवि का यही भाव है। बुदबुदो के रूप से ससार के प्रलय और उत्पत्ति का दृष्टान्त भी भारतीय वेदान्त का ही रूप है। "जलबुद्‌बुद्‌वत्" कह कर जगत् का स्वरूप समझाया करते हैं। गीता मे यही बात यो कहा है—

"भूतग्राम स एवाय भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।"

अर्थात् यह चराचर उत्पन्न होता चला जाता है और मिटता चला जाता है। बस यही क्रम शाश्वत रूप मे विद्यमान रहता है। "अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्त मध्यानि भारत। अव्यक्तनिधनान्येव तत्र कापरिवेदना।" अर्थात् समस्त जड चेतन सृष्टि के अभाव दशा मे अव्यक्त रूप मे थे, अप्रकटित रूप मे थे, फिर ये व्यक्त (प्रकट) रूप मे परिवर्तित होते हैं, पुन ये अपने ही मूलरूप (अव्यक्त रूप) मे चले जायेंगे। यही जगत् का स्वभाव है। इसमे शोक नहीं करना चाहिये।

२—एकछवि संहार—शब्दार्थ— उडगन=नक्षत्र। स्पन्दन=कम्पन। विभात=प्रभात। त्रिगुण=सत्व, रज, तम ये तीन गुण। सृजन=उत्पत्ति। सर्व प्रलयकर=सब कुछ नष्ट कर देने वाला। म्लान=मुरझाया हुआ। अम्लान=हरा भरा, ताजा। आदान=लेना।

कवि बताता है कि समस्त वस्तुओ मे एक ही तत्त्व, एक ही रूप और एक ही क्रिया विद्यमान है। उनमे भेददृष्टि तो केवल औपाधिक है और भ्रम है। आकाश के असख्य तारे भिन्न-भिन्न होते हुए भी एक समान धर्म से व्याप्त हैं। एक-सी ही सब की कान्ति है। सब मे एक-सी ही गति है। एक-से ही सब टिमटिमाया करते है और सब एक ही प्रभातमयी आभा मे विलीन हो जाया करते है। सभी एक ही नियम से नियमित हैं। उन असख्य नक्षत्रो के पृथक्-पृथक् रूपो के अन्तर्गत एक ही तत्त्व समस्त रूप से अनुस्यूत है।

ससार के प्रतीयमान सुख और दुख देखने मे तो दो अलग-अलग प्रतीत होते है, परन्तु हैं दोनो एक ही वस्तु। भिन्न-भिन्न दिखाई पडना तो हमारी प्रतीत का भेद मात्र है। जैसे एक ही लहर के दो किनारे भिन्न होने पर भी एक ही होते हैं। जैसे रात और दिन वस्तुत एक ही वस्तु हैं। क्योकि "समय या काल" एक ही पदार्थ है, उसी एक वस्तु के ये दो विभाग कर दिये गये हैं, तब भी रात और दिन नाम और रूप पृथकता होने पर अपने मूलतत्त्व समय से भिन्न नही हैं। इसे यो समझें (जैसे एक लोटे का जल दो भिन्न-भिन्न काले और सफेद पात्रो मे डाल देने पर भी भिन्न नही हो जाता है। उसी भाँति एक ही समय पदार्थ दिन और रात इन रूपो मे विभक्त होने पर भी मूलरूप मे एक ही वस्तु है।) इसी प्रकार जीवन मे भी दुख और सुख ये दो वस्तु न होकर एक ही अनुभूति, सवेदना या प्रतीति रूप तत्त्व के विभक्त रूप हैं। इन्ही सुखदु खात्मक अनुभूतियो से यह ससार पूर्ण है, इसी को त्रिगुणात्मक ससार कहते हैं। सत्व, रज और तम इन्ही तीन गुणो से सुखदु खात्मक ससार व्याप्त है। उत्पत्ति का ही दूसरा रूप सहार है। उत्पत्ति और नाश ये दोनो वस्तुत एक ही व्यापार के दो भिन्न स्वरूप है। केवल प्रतीतिमात्र का भेद है। (**एक एव देवदत्त. जटिलो मुण्डी शिखीच।** अर्थात देवदत्त नामक एक ही व्यक्ति जब जटा रख लेता है तब जटिली कहलाता है, जब सिर घुटा लेता है, तब वही मुण्डी कहलाता है और जब शिखा रख लेता है, तब शिखावान् कहलाता है, फिर भी वह तीनो भिन्न अवस्थाओ मे रहता देवदत्त ही है।)

१—"अचिर मे चिर का अन्वेषण" कहकर पूर्व छन्द मे जो दार्शनिक सिद्धात बताया गया है, उसी को अनेक दृष्टान्तो से इस छन्द मे विशदीकरण किया गया है। अचिर भाव क्या है और उनमे एकत्व या समानरूप से रहने वाली चिर वस्तु क्या है? यह बात इन दृष्टान्तो मे स्पष्ट हो जाती है। असख्य नक्षत्र, लोल-लहर के छोर, सुख-दुख, निशि-भोर और त्रिगुण पूर्ण ससार इन शब्दो मे जो बातें समझाई गई हैं उन्हें भारतीय वेदान्त मे यो समझाया गया है—

"तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासासर्वमिदं विभाति।"

अर्थात् उसी ज्योतिमान ब्रह्म का एक ही प्रकाश, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, नक्षत्र आदि पदार्थों मे भिन्न-भिन्न रूप मे प्रतीत होना। और

"अविनश्यत च भूतेषु विनश्यतमिव च स्थितम्।"

अर्थात् वह ब्रह्म स्वय तो अविभक्त है, एक है, परन्तु असख्य जड-चेतन पदार्थों मे वह भिन्न-भिन्न या विभक्त हुआ सा प्रतीत होता है।

२—सुख दु ख की समानता निशिभार से देने का तात्पर्य भी "अचिर मे चिर का अन्वेषण" का सुन्दर दृष्टान्त प्रस्तुत करना ही है। इन दोनो का वर्णसाम्य और भाव साम्य तो स्पष्ट है ही, पर दोनो का समास धर्म यहाँ आगमापायिता और क्रमिकता अधिक विवक्षित है। सुख और दु ख जिस प्रकार आते हैं वैसे ही चले भी जाया करते हैं और उनका आगम और अपाय का क्रम इस प्रकार निरन्तर अक्षुण रहता है, इसलिए गीता मे कहा गया है–

"आगमापायिनोऽनित्याँ स्तांस्तितिक्षस्व भारत।"

अर्थात्, हे अर्जुन ! ये सुख और दु ख सदा उत्पत्तिशील हैं, अत विनाशशील भी हैं, तुम इनको सहन करते रहो। एक न एक दिन ये स्वय चले जायेंगे।

आगमापायी का तात्पर्य यो समझें। नैयायिक लोगो का यह व्यापक सिद्धान्त है कि 'यद् यद् जन्य तद् तद् ध्वसि।" अर्थात् जो वस्तु उत्पत्तिमान् है वह अवश्य ही विनाशशील हुआ करती है। अतः जब सुख दु ख उत्पत्तिमान् हैं तो साथ ही विनाश वान् भी अवश्य होगे ही। "अनुकूलवेदनीय सुखम्।" और" प्रतिकूल वेदनीयं दु खम्" अपनी आत्मा के अनुकूल वस्तु सुख और प्रतिकूल वस्तु दुख हुआ करती है। यह अनुकूलता और प्रतिकूलता त्रैकालिक और सामान्यगत नही होती है, किंतु व्यक्ति भेद से भिन्न-भिन्न होती है, अत अनित्य होती है।

३—मूदती आदान प्रदान।

ऊपर के पद्य मे बताये गये "सृजन ही है सहार" इस सिद्धान्त को अनेको दृष्टान्तो से कवि समझा रहा है। वह कहता है कि मृत्यु रूपी रात्रि मे समस्त प्राणी अपनी आँखें मूद लिया करते हैं और जब जीवन रूपी प्रभात आता है, तब सब प्राणी अपनी आँखें खोल लिया करते हैं। यदि मूदने का व्यापार न हो तो खोलने के व्यापार का अस्तित्व किस प्रकार हो सकता है ? खोलना और मूदना में, दोनो क्रिया मे, जिस भाति परस्पर सापेक्ष है उसी भाँति रात और दिन भी परस्पर सापेक्ष्य हैं। उसी प्रकार सोना और जागना मे परस्पर सापेक्ष है और जीवन और मृत्यु भी परस्पर सापेक्ष्य हैं। उसी भाँति सृजन और सहार भी परस्पर सापेक्ष्य हैं। दोनो का अस्तित्व एक दूसरे पर निर्भर रहा करता है। जीवन और जगत् मे मृत्यु या प्रलय एक वरदान स्वरूप समझना चाहिये, क्योकि इन्ही के साथ नवजीवन या सृष्टि का बीज दिया रहता है, यही जीवन के मूलभूत पूर्वरूप हैं। जिस प्रकार शिशिर ऋतु की पतझड के बाद वसन्त की नूतन कोपलें फूट पडती है, समस्त प्रकृति शिशिर के पतझड के पश्चात् ही नूतन कलियों का नवजीवन प्राप्त करती है, उसी प्रकार मृत्यु या प्रलय ही जीवन और सृष्टि का आदि कारण है। "सृजन ही सहार" है। मृत्यु मे ही हमारा अज्ञात भविष्य छिपा रहता है, दु ख मे ही अज्ञात सुख दिया है और रात मे ही भविष्य का प्रभात दिया रहता है। प्रलय मे ही नूतन

सृष्टि का रूप बीज रूप मे दिया रहता है। हमे, मौत और दु खो को बुरा समझ क उनसे भागना नही चाहिये, किंतु उन्हे वरदान स्वरूप ग्रहण करना चाहिये।

पतझड के बाद वसन्त मे फूलो मे कोमल मुसकान छा जाती है। थोडे समय बाद वह मुसकान भी लीन हो जाती है। किंतु यह न समझना चाहिये कि फूलो की मृत्यु हो गई है। क्योकि वे ही फूल मुरझा कर झडने पर नूतन फलो के रूप मे नवजीवन प्राप्त कर लेते हैं। अत आत्म बलिदान करना तो बहुत महान् है। मृत्यु बडी उत्तम वस्तु है। बिना आत्मबलिदान के, बिना मरे नवजीवन प्राप्त नही हा सकता है। मृत्यु ही जीवन है। यह ससार केवल आदान और प्रदान है। जीवन देना और फिर जीवन प्राप्त करना यही ससार का सार है। इसी आदान-प्रदान से ससार का क्रम चल रहा है।

१—यहाँ कवि भारतीय सस्कारो से पूर्ण प्रभावित हो गया है। पूव जन्म और पुनर्जन्म के विश्वास का इस छन्द मे स्पष्ट सकेत किया गया है। गीता मे मृत्यु को एक मङ्गलमय व्यापार यो बताया गया है—

"वासासि जीर्णानि यथाविहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि सयति नवानि देही॥"

अर्थात जिस प्रकार मनुष्य फटे वस्त्रो को उतार कर नये-नये कपडे पहिना करता है और इस क्रिया मे दुखी नही, आनन्दित होता है उसी प्रकार आत्मा एक फटे, जीर्ण शरीर को छोड कर दूसरे नूतन शरीर ग्रहण करने मे आनन्दित होती है।

२—मृत्यु, वात और कुसुम इन सब का मानवीकरण स्पष्ट है।

४—एक ही .... मधुर झकार—शब्दार्थ—उल्लास=चैतन्य, आनन्द। विविधा भास=अनेक प्रकार से प्रतीयमान। लास=नृत्य। मर्म=रहस्य। झकार=गतिशील व्यापकता।

एक ही चैतन्य सत्ता है, एक ही असीम चिरन्तन आनन्द या सौन्दर्य है जो ससार की भिन्न-भिन्न वस्तुओं मे नाना प्रकार से प्रतिभासित हुआ करता है। वही एक असीम सौन्दर्य तरल समुद्र मे हरे रग मे प्रतीत होता है। वही चिरमान सत्ता (ब्रह्म) का असीम सौंदर्य स्वच्छ आकाश मे नीलिमा के रूप मे प्रतीत होता है। वही प्राणियो के हृदयो मे प्रेम का उच्छ्वास बन कर प्रकट होता है। प्रेम भी उसी एक चिरन्तन तत्व के आनन्द का स्वरूप है। वही काव्य मे नव रसो के रूप मे प्रकट हो जाता है। वही फूलो मे सुगन्धि का रूप बनकर प्रकट होता है। नक्षत्रो की ज्योतिमयी टिमटिमाहट और सुन्दर नारी के निर्निमेष पलको की हँसी मे भी उसी का प्रतिबिम्ब रहता है। चचल लहरो मे चैतन्य नृत्य का स्वरूप बन जाता है। इस भाँति एक ही रहस्यमय सौन्दर्य का आकर्षक आनन्द नाना प्रकार की वस्तुओं में नाना रूपो में प्रकट हुआ करता है -

१—इस बात को गीता में

"यद् यद् विभू

तत्तदेवा

अर्थात् ससार में जितने विभूतिवान् प्राणी हैं वे सब ब्रह्म के तेज के अश हैं, जितने सौन्दर्यशाली पदार्थ है वे सब ब्रह्म के तेज के अश हैं जितने बलवान् या अलौकिक पराक्रमी सत्व हैं सब उसी ब्रह्म के अशरूप हैं।

५—वही प्रज्ञा . का ससार—शब्दार्थ—प्रज्ञा=बुद्धि या ज्ञान। प्रणय=प्रेम। लावण्य=सौन्दर्य। शिव=मगल भावना। ध्वनित=प्रतीयमान्। भावनामय=भावना से पूर्ण।

बुद्धि या ज्ञान, बस केवल एक ही सत्य स्वरूप तत्त्व ससार में विद्यमान है। वही ज्ञान तत्त्व किसी मानव के हृदय मे अपार प्रेम का रूप लेकर प्रकट होता है। मानव किसी प्रेमी के सौन्दर्य से आकृष्ट होता है। अत प्रेमी के हृदय का अपार आकर्षण और सुन्दर नारी के आंखो का सौन्दर्य ये दोनो ही उसी सत् स्वरूपात्मक ज्ञान के ही रूपान्तर हैं। ज्ञाता और ज्ञेय ये दोनो ही ब्रह्म के स्वरूप हैं। कई मानव ससार मे अनुरक्त रहते हैं तो उनका अनुराग भी उसी प्रज्ञा का एक स्वरूप है और कई मानव भौतिक आकर्षणों मे अरुचि रख कर लोक मगल कामना से जगत् की नि स्वार्थ सेवा मे तत्पर रह कर असीम आनन्द प्राप्त करते हैं, तो यह प्रवृत्ति भी उसी एक सत् स्वरूपा प्रज्ञा का ही एक रूप है। जिस व्यक्ति को जिस व्यवसाय में आनन्द की प्राप्ति होती है वह सब व्यवसाय उसी प्रज्ञा का स्वरूप हुआ करता है। इस प्रकार मानव मानव की आनन्द प्राप्ति की विशेष क्रियायें तथा प्रवृत्तियाँ भिन्न-भिन्न स्वरो (स्वरूपो) मे ध्वनित (प्रतीयमान्) होती हैं जो उस उस व्यक्ति के लिए बडी सुकुमार और मधुर हुआ करती है। अत यह समस्त ससार दिव्य सौन्दर्य, प्रेम और भावना इन तीनो तत्त्वो का मानो साकार स्वरूप है, इन तीनो का स्थूल आकार ही यह ससार के राग और विराग ये दोनो भावनायें सुन्दर और सत्य हैं और मूलभूत सत् स्वरूपा के विविध स्वरूप हैं।

१—"विविध द्रव्यो मे विविध प्रकार" की बात को ही इस छन्द मे दृष्टान्तो द्वारा प्रकट किया गया है। "प्रज्ञा का सत्य स्वरूप" से तात्पर्य ज्ञानमयी आत्मा से है। क्योकि आत्मा ज्ञानात्मक हुआ करती है। "ज्ञानाधिकरणमात्मा" आत्मा ज्ञान का अधिकरण है। वही एक बुद्धि ज्ञानेन्द्रिय विविध रूपो मे परिवर्तित हुआ करती है। गीता मे कहा है—

"व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्॥"

अर्थात् एक ही बुद्धि का स्वरूप दृढ सकल्प वाले व्यक्ति मे सकल्पात्मक स्वरूप वाली होती है और वही एक अविवेकियो या आसक्त मानवो मे सकल्प विकल्पात्मक रूप मे अनन्त प्रकार की हुआ करती है। "कोऊ काहू मे मगन कोऊ काहू मे मगन"। ससार मे जितनी भावना है वे सब उसी ब्रह्म की एक परमाणु स्वरूपा है। कहा है कि—

"ये चैव सात्विका भावा राजसास्तामसाश्चे ये
मत्त एवेति तान् विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि।"

अर्थात् त्रिगुणात्मक सब भावो की उत्पत्ति मुझमे ही होती है, पर वे सब मुझ मे ही व्याप्त है, मैं उनमे लिप्त नही हूँ।

६—**स्वीय कर्मों . . .मार**—कवि कहता है कि जगत् की इस विविध रूपता के मूल कारण मानवो के विविध कर्म हुआ करते हैं। अपने-अपने विभिन्न-विभिन्न कर्मो के अनुसार ही एक ही गुण नाना स्वरूपो मे परिणत हुआ करता है। जिस प्रकार एक ही सूत्र से सुकुमार राखी भी बनती है जिसे बहिन भाई के हाथ मे प्यार पूर्वक बाधती है और वही सूत्र हाथो की हथकडी बनकर अपराधी के हाथ भी बँधता है। दोनो रूप एक सूत्र के हैं। उसी प्रकार आनन्दात्मक एक ही सतोगुण मानव के कर्मानुसार सत्व, रज और तम मे परिणत हुआ करता है।

७—**कामनाओं . जीवन का माल—शब्दार्थ**—पुलिन=तट, किनारे। ज्ञानामृत=ज्ञान रूपी अमृत। वेदना=दुख। दमक=चमक। स्वर्ण-हुलास=सुवर्ण की आभा। याम=प्रहर। प्रकाम=अत्यन्त। इष्ट=प्राप्य वस्तु। अनमोल=अमूल्य वस्तु।

यहाँ कवि असफलता, निराशा, कष्ट और सङ्घर्षों को सुन्दर रूप मे दिखाता है। वह कहता है कि मानव नाना प्रकार की कामनायें करता है और उनमे असफल हो जाता है। यही असफलता उसे प्रहार और आघात के रूप में दिखाई देती है। उसके हृदय मे ठेस पहुचती है तभी वह अधिकाधिक आशा बाँधता हुआ सघर्ष जारी रखता है और अधिकाधिक स्फूर्ति से कर्म मे तत्पर हो जाया करता है। ससार के हृदय के तारो मे कामनाओ की सफलता के आघात पडते हैं जिनसे जीवन और स्फूर्ति रूपी झङ्कार का उदय होता रहता है। यदि जीवन मे असफलता न हो तो जीवन निष्कर्मण्य और स्फूर्तिहीन बन जाया करे। सुख और दुख ये दो किनारे है जिसमे ज्ञान रूपी अमृत की धारा बहा करती है। अर्थात् उपर्युक्त विवेक रूपी ज्ञान से मनुष्य सुख और दुखो से प्रभावित नही हुआ करता है। जीवन मे रुदन के आँसू मानव को विकल कर देते हैं। किन्तु आँसू भी जीवन मे वरदान स्वरूप हुआ करते हैं। क्योकि वे आँसू ही आँखो को जीवन (पानी) का दान किया करते हैं और वे होठो की हिलती हुई हँसी के मानो द्रव है। दुख मानव जीवन के लिए मङ्गलमय वस्तु है क्योकि दुख रूपी अग्नि मे तप कर प्राण रूपी सुवर्ण अपना कलुष विकार छोडकर सुन्दर चमक मे निखर उठते है। सुख हमे सुन्दर और सुखद इसलिए लगता है कि हम उसी के लिए आठो प्रहर व्यग्र रहते है और उसी की प्राप्ति के लिए तरसते रहते हैं। तरस, तडपन और नाना सघर्षो के बाद प्राप्त हुई वस्तु मे सुख का अनुभव स्वाभाविक होता है। सुख पदार्थ यदि हमे यो ही अनायास और प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध हो जाया करता तो उसका न कोई जीवन मे महत्त्व होता और न इतना मूल्य। सफलता और विजय हमे इसीलिए अच्छी लगती है कि हम रात दिन का सग्राम झेला करते है उसके बाद कही सफलता मिला करती है। बहुत कष्ट और परिश्रम से उपलब्ध वस्तु मे सरसता हुआ ही करती है। यदि सफलता भी यो ही अनायास और सदा मिल जाया करती तो उसमे इतनी सरसता और इतना

सुख न मिला करता। तात्पर्य यह है कि दुःख और सफलता स्वयं इतने मूल्यवान् और सरस नहीं हैं जितना कि हमने अपने दृष्टिकोणों में उन्हें मूल्यवान् और सरस बना रखा है। जिस वस्तु को हमें चाह होती है वह दुर्लभ और बहुत कम हुआ करती है इसीलिए वह मूल्यवान् हुआ करती है। जीवन में कर्म, संग्राम, कष्ट सहन इन सब के कारण ही वस्तु का मूल्य हुआ करता है, अतः जीवन का मूल्य ही संग्राम और संघर्ष है इसी के कारण हमें जीवन में सरसता और मिठास की उपलब्धि होती है।

८—विना प्यार—कवि कहता है कि दुःख के विना सब सुख फीका लगने लग जाया करता है। दुःख के अस्तित्व से ही सुख की सरसता का बोध होता है। यदि निरन्तर सुख ही सुख हुआ करता तो मानव अघा जाता और ऊब जाया करता। यदि जीवन में आँसू या दुःख न होता तो सारा जीवन भार-स्वरूप बन जाया करता, इसका माधुर्य ही नष्ट हो जाता। दया, क्षमा और प्यार सब वस्तुएँ आपेक्षिक हैं, इनके अस्तित्व का महत्त्व संसार में इसीलिए है कि संसार दया का पात्र है, दीन है, दुर्बल है और उसे दया, क्षमा और प्यार की आवश्यकता है। यदि संसार के सभी प्राणी समर्थ, बलवान् और स्वयं में पूर्ण हुआ करते तो न दया का कुछ महत्त्व होता न क्षमा का मूल्य था और न प्रेम का मूल्याङ्कन कर पाता। अतः जीवन की दुर्बलताएँ और दीनताएँ मानव के लिए बहुत मङ्गलमयी और आवश्यक हैं।

९—आज का ह्रास—शब्दार्थ—आह्लाद=प्रसन्नता। विषाद=दुःख। स्वप्न-गूढ=स्वप्न की भाँति रहस्यमय।

हम देखते हैं कि आज का दुःख कल सुख के रूप में परिणत हो जाता है और कल का सुख आज के विषाद में। यह संसार तो एक समस्यमय है जो स्वप्न की भाँति रहस्यमय है। इसका रहस्य इस संसार में नहीं प्रकट हो सकता है। इस समस्या की पूर्ति तो जगत् के उस पार है। जगत् और जीवन का अर्थ ही निरन्तर विकासोन्मुख होते जाना है। कभी मृत्यु होती है, कभी जन्म होता है और कभी शनैः शनैः ह्रास होता जाता है। यही जीवन का क्रम बँधा रहता है।

१०—हमारे स्वरूप—शब्दार्थ—अवरूप=दूसरे रूप में।

जिन-जिन कर्मों को हम अपने कर्म कहा करते हैं और हम अपने ऊपर कर्ता का अभिमान किया करते हैं कि हम करने वाले हैं या मैंने यह किया, मैंने वह किया इत्यादि, वे कर्म हमारे कर्म नहीं होते हैं। उनके करने की प्रेरणा कोई और ही किया करता है। हम तो केवल निमित्त मात्र हैं, कर्ता कोई अन्य है, हम केवल साधन मात्र हैं। हमें कर्तृत्व का झूठा अभिमान हुआ करता है। जिसे हम "मैं" कहा करते हैं या "मैं" शब्द से हम जिस उपाधिधारी शरीर का परिचय पाते हैं, वस्तुतः वह हम नहीं हैं। हम शरीर और नाम से पृथक् कोई अन्य हैं। अपने शरीर के आवरण में और नाम के पर्दे के पीछे छुए हैं, शरीर और नाम के भीतर हमारा स्वरूप कुछ दूसरा ही है। वह स्वरूप है ज्ञानमय आत्मा जो सर्वव्यापक ब्रह्म का एक अंग है। उसे हम नहीं जान पाते हैं। उस विशुद्ध ज्ञानमय आत्मा को हम तभी जान सकते हैं जब अपने शरीर और नाम को मिटा कर अपने कारण भूत ब्रह्म में लीन हो

सकेंगे। हम ससार मे उसी नाम और वाह्य भौतिक शरीर को गुमाने के लिए आये हैं, इसी नाम और रूप की वाह्य उपाधि का त्याग करके ही हम अपने वास्तविक रूप को प्राप्त कर सकते हैं।

१—यहाँ शुद्ध अद्वैतवाद का भाव बताया गया है। उपनिषद् मे कहा है कि—

"यथा नद्य स्यन्दमानाः समुद्र अस्त गच्छन्ति नाम रूपे विहाय।"

अर्थात् जिस प्रकार बहती हुई नदियाँ समुद्र मे मिलकर समुद्रमय हो जाती हैं और अपना नाम एव रूप दोनो को गुमा दिया करती है उसी प्रकार व्यक्ति ब्रह्म मे लीन होकर तदाकार बन जाता है। फिर उसके नाम और रूप ये दोनो आवरण लुप्त हो जाते हैं।

२—यहाँ पर वेदान्त का कार्य, कर्तृत्व और क्रिया इन तीनो का भी दिग्दर्शन किया गया है। करने वाला, कर्म और व्यापार इनको गीता मे यो समझाया है, कि—

"कार्य करण कर्तृत्वे हेतु: प्रकृतिरुच्यते।"

अर्थात् सब कर्मो का प्रेरक, सब करने वालो का प्रेरक और सब व्यापारो का प्रेरक केवल प्रकृति ही हुआ करती है। हमे कर्तृत्व का व्यर्थ अभिमान होता है। मानव के अन्दर का अहकार तत्त्व की भेद दृष्टि को उत्पन्न करता है। उस अहकार के मिटने पर ही व्यष्टिमयी दृष्टि का लोप हो जाता है। नाम और रूप मे ही अपने को समझना यही अहकार है। अत इसका लय होना कल्याणमय है। जगत् मे मौन या प्रलय तो उत्तम वस्तु है क्योकि इससे ही यह नाम रूपात्मक समस्त जगत् का औपाधिक भेद मिटा करता है और सब कुछ फिर से अपने मूल भूत ब्रह्म मे एकाकार हो जाया करता है।

१७—मछुवे का गीत

<u>अवतरणिका</u>—इस गीत मे कवि ने मछुवा, मछली, जल, वशी आदि के रूपक से एक ऐसी किशोरी वालिका का चित्रण किया है जो अभी प्रेम से परिचित नही हुई है, जो अपने ही रूप मे मस्त है, जो सदा पर्दे के भीतर रहा करती है और जो अपने घर मे वडे लाड-प्यार मे पली हुई है। इस गीत की अन्तिम पक्ति "लिये डोर वह अगजग की कर हरता तन मन प्राण" न होती तो यह गीत विशुद्ध छायावाद की कोटि मे आया होता, किन्तु अन्तिम पक्ति से सारा गीत रहस्यवादी हो गया है। अत जीव और ब्रह्म का, सम्बन्ध प्रेमी और प्रेमिका के रूप मे स्पष्ट किया गया है। यहाँ मछली जीवात्मा है और मछुवा ब्रह्म है।

१—ओ प्राण! (जीवात्मा) तुमको अभी प्रेम की वशी नही लगी है। उस परब्रह्म से प्रेम करने के आनन्द को अभी तूने नही जाना है। तू इस मानव जीवन रूपी पर्दे के भीतर या जल रूपी पर्दे के भीतर छिपी हुई रहती है अपने ही सौन्दर्य पर मोहित रहने वाली तू कौन है? युवती और मछली की भाँति अपने नव-यौवन रूपी परो के कारण सदा चचल रहती है। पर याद रख! प्रेम के वाण वड तीखे हुआ करते हैं कभी न कभी तुझे भी अवश्य वीध डालेंगे।

१—यहाँ मछली के प्रतीक से एक ऐसी युवती का वर्णन है जो पर्दे के अन्दर छिपी रहती है और अपने यौवन पर ही मस्त है। ऐसी युवती मानो जीवात्मा है जो शरीर के पर्दे के भीतर छिपी रहती है।

२—जीवन शब्द यहाँ श्लिष्ट है, इसका दूसरा अर्थ मछली के पक्ष मे जल होगा।

३—इस गीत की नायिका की व्यग्रता न दिखा कर प्रियतम की व्यग्रता प्रदर्शित की गई है, क्योंकि यह तो स्वय छिपी है, पर मछुवा रूपी प्रेमी उसे फासने के लिए टोह में बैठा है। आशय यह होता है कि परमात्मा सदा जीवात्मा को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए प्रयत्नशील रहता है, किन्तु जीवात्मा उससे दूर हटना चाहती है और सदा अपने अहकार मे ही भूली-भटकी मस्त रहती है।

४—"प्रेम को बसी लगो न प्राण" इसी स्थायी पद की चौथी मात्रा "को" को ह्रस्व मात्रा होना चाहिये था। वैसे भी उच्चारण के समय सगीत मे ह्रस्व करना ही पडेगा। अत "को" के स्थान पर कोई ह्रस्व मात्रा होती तो ठीक होता, क्योकि हिन्दी मे दीर्घ मात्रा का ह्रस्व उच्चारण प्राय दोष माना जाता है। अथवा "प्रेम" के "म" का उच्चारण "म्" हलन्त कर देना पडेगा जो ठीक नहीं जँचेगा।

२—गेह . रूप का मान—शब्दार्थ—फेनिल=झागदार। ममता=मोह।

तुम अब घर का लाडप्यार छोड़ दो और माता-पिता आदि की ममता के अचल मे रहने की अब तुम्हारी अवस्था नही रही है, तुम अब युवती हो गई हो। तुम भी ओ मछली! झाग भरे चचल लहरों मे लहरना छोडकर बाहर निकल आओ। प्रतिक्षण तुम डुबकी मारती हो और कभी ऊपर तैरती रहती हो, मानो तुम्हे अपने रूप का वडा अभिमान है। तुम कभी छिपती हो और कभी प्रकट हो जाती हो। अपने रूप पर इतना अभिमान न करो, वह अभिमान व्यर्थ है। ओ जीवात्मा! तुम ससार के लाडप्यार, मोह मे अपने यथार्थ रूप को क्यो भूली हुई हो? ससार की यह आसक्ति छोड दो। ससार का रूप वैभव, राग आदि का अभिमान व्यर्थ हुआ करता है।

१—इस पूरी कविता को समझने के लिए पाठक को अपने सम्मुख तीन भिन्न-भिन्न चित्र प्रस्तुत रखने होंगे, मछली, युवती और जीवात्मा। इन तीनो मे मछली और युवती के दो प्रत्यक्ष वाच्य हैं, किन्तु जीवात्मा सकेतगम्य है। मछली और युवती मे भी युवती के अर्थ की विशदता अधिक है।

३—आये नवघन सकेगी मान—ओ मछली! आकाश मे बादल नाना प्रकार का वेष धारण करके आ रहे हैं। और वर्षा ऋतु मे चारो ओर से दादुर, मोर, झींगुर, नदी-नाले आदि के शब्द उठते आ रहे हैं। अत इस वर्षा ऋतु में तू सदा पानी मे छिपी नहीं रह सकेगी, कभी न कभी पकड मे आ ही जायेगी। मेरा कहना मान।

ओ युवती! देखो मेघ रूपी युवक वृन्द तुम्हें आकृष्ट करने के लिए नाना सुन्दर वेष धारण करके आ रहे हैं। पावस रूपी गायिका का चारों ओर सुन्दर सगीत

चल रहा है। ऐसे वातावरण मे तू अपने सौन्दर्य मे कैसे छिपी रह सकेगी । किसी न किसी युवक के प्रेम-पाश मे तू अवश्य बँध जायगी।

ओ जीवात्मा! तू अपने नाम रूपात्मक इस शारीरिक आवरण मे और अधिक छिपी नही रह सकेगी। ईश्वर की ओर कभी न कभी तू उन्मुख हो ही जायगी, क्योंकि प्रकृति के अद्भुत सौन्दर्य को देखकर तुझमे जिज्ञासा उत्पन्न होगी कि इस अद्भुत छवि का नियन्ता कौन है? तब तू परमात्मा के प्रेम की ओर बढती जायगी। देख तो, आकाश मे रग विरगे बादल छारहे हैं और वर्षा मे चारो ओर मधुर स्वर गूज रहे हैं। इस सुन्दर रहस्य के प्रति तेरी अवश्य जिज्ञासा उत्पन्न होगी। तू इसी प्रकार ससार मे आसक्त होकर अहकार के आवरण मे छिपी न रह सकेगी।

१—'नव', 'घन' और 'पावस' का यहाँ मानवीकरण है जो युवती के पक्ष मे अन्वयित होता है। यदि मानवीकरण न भी माना जाय तो भी अर्थ की सङ्गति ठीक ही बैठती है। तब वर्षा ऋतु और बादल युवती के हृदय मे प्रेमोत्पादन के उद्दीपन अथवा अकुरण मे सहायक माने जायेंगे। मछली वाले अर्थ मे पावस और घन का वातावरण मछुवे के लिए बडा उपयोगी सिद्ध होता है। क्योंकि वर्षा मे पानी गदा, हो जाता है अत मछली जाल मे आसानी से फस जाया करती है। निर्मल जल मे मछली पकडने मे मछुवे को अधिक असुविधा होती है।

२—रहस्यवाद की तीन कोटियो (जिज्ञासावस्था, साधनावस्था एव तन्मयावस्था) मे प्रथम जिज्ञासावस्था का मूल कारण प्रकृति निरीक्षण मे उत्पन्न कौतूहल हुआ करता है। इसी कौतूहल से आरम्भ होकर आत्मा ब्रह्म-साधना की ओर बढने लगती है। अत इस छन्द मे बादल और पावस ये प्रकृति के सुन्दर उपादान आत्मा के कौतूहल जागृति का भाव व्यक्त करने को प्रस्तुत किये गये है।

४—बाँध द्वार .... अनजान—ओ मछली! जब मछुआ अपना स्वर्णिम जाल तानेगा तब तू उसमे उलझ जायेगी जल के द्वार को लाँघकर बाहर आ पडेगी। तुझे पता भी नही चल पायेगा कि मैं कब बिध गई हूँ और कब फँस गई हूँ, क्योंकि सभी मछलियाँ अपनी अनजान अवस्था मे ही बिधा करती हैं? यदि वे मछुवे, जाल और वशी के रहस्य को जानती रहे तो कभी फँसा न करें। तू लुक छिपकर कब तक बचती रहेगी।

ओ युवती! तू अपने घर की चार दीवारी मे बाहर ज्योंही निकलेगी त्यो ही किसी प्रेमी के रगीन सुनहले जाल मे फँस ही जावेगी। तू घर के अन्दर लुकती-छिपती इस प्रकार कब तक बचती रहेगी। ऐसे कोई नही बच पाया है। सौन्दर्य और रूप पर सब मुग्ध हो जाया करते हैं। तुझे अपने उलझने का पता भी न चलेगा।

ओ आत्मा! जब तू अपने व्यक्तित्व की सीमा से बाहर आकर प्रकृति की स्वर्गिक शोभा को देखेगी, जिसे उस ईश्वर ने समस्त विश्व मे तुम्हे अपनी ओर आकृष्ट करने को फैलाई है, तो तू अवश्य उसकी ओर प्रेमोन्मुख हो जायगी। उस तन्मयता मे तुझे अपना भी ध्यान न रह पायेगा। क्योंकि अन्तर्मुखी अवस्था मे ही आत्मा और परमात्मा का सयोग होता है।

५—घिर घिर मन प्राण—आकाश मे मेघ घिर-घिरकर विश्व पर न्योछावर हो रहे हैं और झरने झर-झर शब्द करते हुए सरोवरो मे वहते जा रहे हैं। वह मछुवा हाथ मे डोर लिये हुए मछली के तन, मन और प्राणो को हरण कर रहा है।

ओ युवती! यह वर्षा ऋतु है। चारो ओर मेघ झडी वरसा रहे हैं, झरने झर रहे हैं। इस प्रेमोद्दीपन के वातावरण मे वह युवक प्रेम की डोरी से तुम्हारे तन, मन और प्राणो को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए उद्यत है।

ओ आत्मा! मेघ छाये हुये हैं, झरने झर रहे हैं। ये प्रकृति के सुन्दर आकर्षण उस परमात्मा ने तुम्हें लगाने के लिये फैलाये हुए हैं। वह तुम्हारे तन, मन और प्राण हरने के लिए—सम्पूर्ण रूप से तुम्हे अपनी ओर खींचने के लिए, हाथ मे डोर लिये हुए है। चराचर के सचालन की वागडोर उसी के हाथ मे है। वह तुम्हे हर समय अपनाने को तत्पर है।

१—यदि यहाँ मेघों का मानवीकरण माना जाय तो युवती के पक्ष मे यो अर्थ होगा कि मेघ रूपी अनेक प्रेमी तुम पर अपने को न्योछावर कर रहे हैं और झरनो के रूप में वे तुम्हारे रूप और सौन्दर्य पर द्रवित हो रहे हैं। पर एक युवक के हाथ मे ही तुम्हारे फांसने की कला है। सभी तुम्हें प्राप्त नही कर सकते हैं। एक ही युवक तुम्हें आकृष्ट करने का उपाय जानने वाला है।

२—निर्झरो के मानवीकरण करने पर भी यह अभिव्यक्ति होती है कि वहुत सरल हृदय के भावुक भी तुम्हारी ओर प्रवृत होकर दौडते आ रहे हैं जो तुम्हारे निवास रूपी सरोवरो मे मिलते जा रहे हैं, मेघ और झरनो जैसे सरस तारल तुम्हारे प्रेम के उत्सक है।

१८—प्रार्थना

अवतरणिका—इस गीत मे परब्रह्म परमात्मा की स्तुति वादल के रूपक द्वारा की गई है। घन शब्द ईश्वर का वाचक भी होता है। चिद्घन, आनन्दघन आदि शब्द परमात्मा के लिए व्यवहृत होते हैं।

१—जग के नूतन—शब्दार्थ—उर्वर=उपजाऊ। ज्योतिर्मय=तेजोमय। अव्यय=कभी न घटने वाला।

हे तेजोमय चित् स्वरूप परमात्मा! इस विश्व के उर्वर आँगन मे जीवन की (जल की) वर्षा करो। तुम फिर अव्यय हो। तुम सदा असख्य जीव की सृष्टि करते रहते हो, फिर भी तुम्हारा अक्षय कोप कभी रिक्त नही होता है। तुम चिर नवीन हो। तुम मे कोई विकार नहीं आ पाता है। ससार मे छोटे-वडे सव प्रकार के प्राणी हैं जो तृण, पेड, पौधो की भाँति तुम्हारी करुणा की वर्षा से और चेतना की वर्षा से पनपते रहते हैं। अत हे ईश्वर तुम उन पर जीवन रूपी जल की वर्षा करते रहो।

१—"उर्वर" का अभिप्राय है कि तुम्हारी जीवन-वर्षा विश्व मे व्यर्थ नही होती है, क्योकि यह विश्व उजाड़ या ऊसर नहीं है।

२–"लघु लघु तृण तरु" से ससार के छोटे-बडे सभी प्राणियो की ओर सकेत किया गया है।

३–"चिर अव्यय चिर नूतन" ये दो विशेषण बादल की ओर यो सगत होगे, बादलो के वर्षण काल मे ऐसा प्रतीत होता है कि न मालूम इनका कोष कितना अक्षय है कि रिक्त होने ही नही पाता, फिर भी वे नित्य नवीन होकर और जल से परिपूर्ण होकर बरसते ही रहते हैं।

२—बरसो सुख यौवन—शब्दार्थ—स्मिति=मुसकान, हर्ष। प्रणय=प्रेम।

ओ बादल रूपी प्रभु! फूलो मे तुम मधु बनकर बरसो। सुकुमार नारियो मे तुम सौन्दर्य एव माधुर्य की वृष्टि करो। प्राणो मे अमर प्रेम बन करके बरसो। सब के प्राणो मे अमर प्रेम भर दो। मानवो के अधरो मे सदा मुसकान भर दो। मानव सदा प्रसन्नता से हँसते रहा करे और उनकी पलको मे स्वप्न भर दो। वे सदा निश्चिन्त और कष्ट हीन होकर सुख-निद्रा लिया करें। हृदयो मे सुख की वर्षा करो और अग-अग मे यौवन भर दो। प्राणियो मे सदा यौवन रहा करे, वे कभी दुखद जरा का दर्शन न करे।

१—"स्मिति स्वप्न अधर पलको मे" और "उर अगो मे सुख यौवन" इन दोनो मे यथा सख्य रूप मे अन्वय होगा, स्मिति का अधर से, स्वप्न का पलको मे, उर का सुख मे, और अङ्गो का यौवन से क्रमश सम्बन्ध है।

३—छू जग के आलिंगन—शब्दार्थ—मृन्मरण=मिट्टी रूपी मृत्यु।

ओ बादल! पृथ्वी के अचेत पडे हुए धूलिकणो को स्पर्श करके तुम उनमे चेतना का सचार करो और उनको पेड पौधो के रूप मे सजीव बना दो। हे प्रभु तुम अपने चैतन्य स्पर्श से ससार के मृत और अचेतन पार्थिव शरीरो मे प्राणो का सचार कर दो। ओ बादल! तुम पृथ्वी की मिट्टी को गीला करके पिण्ड रूप मे बाँध दो। अलग-अलग पडे हुए मिट्टी के कणो को गीला करके परस्पर जोड दो। हे प्रभु! तुम मिट्टी रूपी मृत्यु को बाध दो (दूर कर दो) मिट्टी के अचेतन भौतिक शरीरो मे प्राणो का सचार करके अचेतनता को दूर कर दो। उनमे प्राणो का आलिङ्गन प्रदान करके प्राणवान बना दो।

१९—सान्ध्य-वन्दना

अवतरणिका—यह सन्ध्याकालिक वन्दना है। रात्रि के चन्द्रमा के माध्यम से प्रभु की प्रार्थना की गई है।

१—जीवन का . भरो हे—शब्दार्थ—श्रम=थकावट। ताप=दुख। सुषमा=सौन्दर्य।

हे भगवन्! मानव जीवन के कष्टो का अपहरण करो यह मानव दिन भर के कर्म-व्यापारो से थक कर चूर हो गया है, अत इसकी सब थकान दूर कर दो, जगत् के मानवो के गृहद्वार सूने पडे हुए हैं, नाना प्रकार के अभाव और आकाक्षाएँ वहाँ भरी हैं, उनमे सुख, सौन्दर्य और वैभव को सुवर्ण-राशि की भाँति भर दो। मानव दिन भर मजदूर की भाँति सुख-सम्पत्ति प्राप्त करने के लिए अथक परिश्रम करता है, सन्ध्या को थका-माँदा घर लौटता है, उसके पारिश्रमिक रूप मे उसका घर सुख सौन्दर्य और वैभव से परिपूर्ण कर दो।

२—लौटे .. प्रच्छाय करो—शब्दार्थ—श्रान्त=थके हुए। करुणानत=दया के भार से झुका हुआ। कर पल्लव=हाथ रूपी पल्लव। विश्व नीड=विश्व रूपी घोसला। प्रच्छाय=घनी छाया।

चराचर के सब प्राण इस समय थके मादे अपने-अपने घरो को लौट गये हैं। अब वे विश्राम चाहते हैं। सभी मानव दिन भर कोलाहलमय नाना कर्म-सघर्षो मे जुटे हुए थे। पशु-पक्षी भी दिन भर अपने-अपने चारे-दाने के लिए इधर-उधर घूम रहे थे, अब वे भी विश्राम के लिए अपने-अपने घोसलो को लौट गये हैं। प्रकृति-जगत मे भी दिन भर का जो कोलाहल था अब सन्ध्या काल मे शान्त हो गया है। वृक्ष भी मौन खडे हुए हैं, उनके अधर रूपी पल्लवो में अब मर्मर ध्वनि बन्द हो गई है। वे वृक्ष शान्त और मौन होकर पक्षियों के घोसलो पर अपने पल्लवो की शीतल छाया कर रहे हैं। हे प्रभु! आप भी इस विश्व रूपी घोसले मे विश्राम लेने वाले मानव पक्षियो पर करुणा के भार से झुके हुए हाथ रूपी पल्लव से घनी-घनी अभय और शीतल छाया प्रदान करो।

३—उदित विचारो—अब शुक्र तारा उदित हो गया है और सूर्य का तेज क्षीण हो चुका है। हवा का तीव्र वेग भी मन्द पड गया है। प्रकृति की सब प्रचण्डता शान्त हो गई हैं। कमल दल सकुचित होकर झुक गये हैं, मानो प्रकृति ने किसी असीम सत्ता के ध्यान मे अपनी आँख मून्द ली हो। इस समय सभी स्थावर जङ्गम, मौन, शान्त और ध्यानावस्थित हो रहे हैं। हे रात्रि के चन्द्रमा! तुम प्राणियो के तन्द्रिल पलको पर सुखद स्वप्न बन कर के विचरण करो। तन्द्रा और आलस्य से झुकी हुई प्राणियो की पलको पर सुख की नीद भर दो जिससे वे दिन भर की थकान को निश्चिन्त होकर मिटा सके।

२०—लहरों का गीत

अवतरणिका—यह रहस्यवादी गीत है। लहरों के माध्यम से कवि ने असख्य जीवात्माओ को ऐसी युवतियो के रूप मे चित्रित किया है जो रूप, सौन्दर्य और सुख से परिपूर्ण है और उमङ्ग से मुरली की ध्वनि मे नृत्य करती रहती हैं तथा अपने पति मे लीन हो जाया करती हैं। लहरे स्वय अपनी गति-विधियो को बता कर अपना परिचय दे रही हैं।

१—अपने ही　　टलमल—शब्दार्थ—फेनिल=झाग भरी।

हम लहरे (सुन्दरियाँ अपने ही सुख से प्रतिक्षण उमग-उमग कर खिल पडती हैं। हम सुन्दरियाँ मोती की भाति अमूल्य जीवन को सदा हथेली मे रख कर फिरा करती हैं। हम लहरो मे झाग उठते हैं जो मोतियो की भाँति सुन्दर लगते हैं। हम जीवात्मायें सत्, चित् और आनन्द स्वरूप हैं और जीवन हमारे लिए खेल सा है।

१—इस गीत मे तीन-तीन चित्र अलग-अलग देखने होंगे, तभी अर्थ स्पष्ट हो सकेगा। लहरो का चित्र, युवतियो का चित्र और आत्मा का स्वरूप, इन तीनो मे अधिक स्पष्ट प्रतीति युवतियों की हो रही है। प्रस्तुत या वर्णनीय होने से लहरो का अर्थ भी स्पष्ट हो जाता है। किन्तु आत्माओं का स्वरूप व्यजनागम्य है। वह सकेतो द्वारा स्पष्ट होता है।

२—छू छू　　　नव दल—शब्दार्थ—पुलकाकुल=रोमाञ्च पूर्ण।

मलय पवन छू-छू कर हमे प्रतिक्षण रोमाञ्चित करता रहता है और जीवन रूपी लहलहाती लता मे अनेक अभिलाषाओ के नये-नये पत्रो को विकसित कर देता है।

१—लहरपक्ष-पवन के स्पर्श से लहरो के बीच मे सूक्ष्म-सूक्ष्म कम्पन उठ पडते हैं। युवतीपक्ष-मलयपवन (नायक) के स्पर्श से युवतियो को रोमाच हो रहा है और नई-नई इच्छायें उनके हृदय मे उत्पन्न हो रही हैं। आत्मापक्ष—आत्मा शरीर प्राप्त करके जब जग जीवन मे प्रविष्ट होती है तो वह सासारिक वायुमण्डल से प्रभावित हो जाती है और अनेक कामनाओ का उदय उसमे होने लगता है।

३—सुन मधुर　　　. अञ्चल—शब्दार्थ—गृह पुलिन=तट रूपी घर का द्वार।

२—युवतीपक्ष—कृष्ण की आकर्षक मुरली और मुग्ध गोपिकाओ के रास लीला का नृत्य यहा सकेतित हो रहा है।

३—आत्मपक्ष—प्रकृति के रमणीय दृश्यो के प्रभाव से कभी-कभी आत्माओ पर ऐसा समाविमय प्रभाव होता है कि आत्मा अपने शरीर की सुवबुध खोकर और शरीर के कटघरे से बाहर विश्वव्यापकता की ओर उन्मुख हो उठती है और उस जन्म अवस्था के दिव्य आनन्द मे आत्म विभोर हो उठती है।

४—चिरजन्म ओझल—शब्दार्थ—ओझल=अन्तर्धान।

हम लगातार उत्पन्न होती जाती हैं और लगातार मिटती जाती है। अतः हम क्षण में जन्म मरण को हँस-हँस कर आलिगन किया करती हैं। विलीन होकर फिर से दूसरे तट के असीम कोने से बारम्बार उठकर फिर उसी में अन्तर्धान हो जाया करती हैं।

१—युवतीपक्ष—जन्ममरण (प्रेमी) को हँस-हँस कर आलिङ्गन किया करती है। लहर पक्ष बिलकुल स्पष्ट है।

आत्मापक्ष—असख्य आत्मायें लगातार शरीर धारण करती रहती हैं और मिटती जाती हैं। उस असीम परब्रह्म की वे अश होकर नाम रूप भेद से शरीर धारण करती हैं और फिर उसी मे समा जाया करती हैं।

२१—घण्टा

अवतरणिका—यह एक शिक्षात्मक कविता है। घण्टे के माध्यम से कवि कुछ मानव जीवन को प्रेरणात्मकता तथा कर्मशीलता की शिक्षा देना चाहता है। सामान्य शिक्षा को छायावादी ढग से कहा गया है।

१—नभ की गई रात—नीरव और नीले आकाश में एक सुन्दर घण्टा टँगा हुआ है जो घडी-घडी बजता रहता है। उसके स्वर कानों में पडते रहते हैं। घण्टा मानो सुनने वालो से कहता है कि ओ जगत् के आलसियो और काम से भागने वालो अब जाग जाओ, अब प्रभात काल हो गया है, और चारो दिशायें प्रकाश से भर गई हैं। इम नूतन प्रभात में सुवर्ण के समान प्रकाश बिखर रहा है, अत कुछ नया काम करो जिसमें कुछ नवीनता हो और नूतन उत्सव हो। इस प्रभात में तुम अपने शरीर और मन को पवित्र कर डालो। निद्रा छोडकर जाग पडो। रात्रि व्यतीत हो गई है।

१—अर्थ और भाव की दृष्टि से यह कविता द्विवेदी युग की शिक्षाप्रद उपदेशात्मक कविताओं के समकक्ष है। परन्तु शैली में पूर्ण रूप से छायावादी प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड रहा, है। अमूर्त, को मूर्त मूर्त को अमूर्त तथा जड को चेतन आदि बनाने की प्रवृत्ति स्पष्ट हो रही है। घण्टे का मानवी करण-सा है। क्योंकि "मन में कुछ करते रहना" मानवस्वभाव है। "नीले आकाश मे" ऐमा सीधा न कह करके "नभ की नीली चुप्पी पर" ऐसे विशेपण से बात कही गई हैं। बात केवल इतनी कहनी है कि घण्टे के स्वर कानो मे पडा करते है। किन्तु छायावादी कवि इस सीधी

बात को भी बिना प्रकृति का आंचल पकडे कुछ कह ही नही पाता है। अत स्वरो को मूर्त पक्षियो का रूप देकर लहराती हुई ध्वनियो को पखो का रूप दे और कानो को घोसले बनाता है जिसने स्वभावत मानव समाज वृक्षो का वर्ण मकेनित हो रहा है। अप्रस्तुत रूप में चित्र ऐसा उपस्थित हो रहा है कि वृक्ष घोंसलो में चिडियां बसेरा ले रही हैं और वहां चहचहा रही है, मानो उप उपदेश कर रही हैं।

२२—वायु के प्रति

अवतरणिका—यह भी एक रहस्यवादी गीत है। इसमें कवि ने चिरन्तन सत्ता का वर्णन वायु के रूप में किया है। कवि स्वभावत कोमल उपा के सचयन का अभ्यासी है। अत वायु को वह एक हल्की और सुन्दर अप्सर रूप मे अङ्कित करता है जो ब्रह्म का प्रतीक है।

१—प्राण अज्ञात—शब्दार्थ—नि सङ्ग=निर्विकार, अनासक्त। अज्ञा दुर्बोध्य। निकुज=झाडी।

ओ प्राण स्वरूप वायु! तुम हल्के हल्के शरीर वाले हो और नीले आ में छिपे रहते हो। सदा चुपचाप हो, सब का स्पर्श करते रहने पर भी तुम निर्विकार और नित्य नवीन रहा करते हो। विश्व के समस्त सौन्दर्य के भी सौन्दर्य हो। फिर भी तुम स्वय आकार हीन हो, एक अदृश्य रहने वाली आ की भाति तुम निराकार रूप मे अपने प्रभाव और व्यापारो को दिखाया करते हो

ओ अप्सरे! तुम प्राणो की भाति प्यारी हो। तुम बहुत हल्के शरीरव हो। आकाश रूपी नीले निकुज मे तुम छिपी रहती हो। तुम सदा मौन रहती तुम सदा तटस्थ रहकर नवीन या युवती ही रहती हो, तुम अनन्त सुन्दर हो। भी तुम अगोचर हो।

ओ अनादि सनातन चेतन-सत्ते! तुम समस्त चराचर के कण-कण मे व्या प्राण स्वरूप हो। एक अखण्ड रूप होने पर भी तुम असख्य जड-चेतन शरी नाना छोटे-छोटे आकारों मे (नाना जीवात्माओ के आकार मे) विभक्त हो। आ की भाति तुम सर्वव्यापक हो। तुम नित्य मौन और आसक्ति हीन(निर्लिप्त हो नित नूतन रहा करते हो।

१—इस गीत मे भी वायु अप्सरा और परमात्मा इन तीनो का पृथक् समझने मे आसानी होगा। "अप्सरा" शब्द अपने ही स्वय स्त्रीलिङ्ग है फि "आ" की अपेक्षा स्त्रीलिंग की अधिक कोमलता कवि "ई" मे देखता है। "अप्सरा" के स्थान पर "अप्सरी" का प्रयोग किया गया है।

२—इसी भावना का ब्रह्म का रूप उपनिषदो मे भी बताया गया है—

'अणोरणीयान् महतो महीयान आत्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।'

"यथा सर्वगत सौक्ष्म्यात् आकाश नोपलिप्यते। सर्वत्रावस्थितो देहे तथ नोपलिप्यते।"

अर्थात् वह ब्रह्म विश्व व्यापक है, अत महान् मे महान् है, जन्तुओ के शरीर मे सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप मे अवस्थित रहती, है अत अणु मे भी अणु रूप है। जिस प्रकार आकाश सर्वगत होने पर भी लिप्त नही होता उसी भाति यह आत्मा भी सर्वत्र सब प्राणियो के शरीरो मे स्थिति रहते हुए भी नि सग और निर्लिप्त रहती है।

"निखिल छवि की छवि" का भाव उपनिषदो मे यो है—"तमेव भान्त मनुभाति सर्व तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।" अर्थात् उसी अनन्त ब्रह्म की छवि से सभी की छवि प्रकाशित हुआ करती है। वही सबसे महान् सौन्दर्यशाली है।

२—अधर तरुपात—शब्दार्थ—अधर=होठ। तरुपात=वृक्षो के पत्ते। भ्रू-भग=भौंहो का सकेत।

ओ वायु! तुम्हारी तनिक-सी प्रेरणा से ही वृक्षो के पत्ते हिलकर मर्मर ध्वनि करते हैं और तुम्हारी प्रेरणा प्राप्त करके ही तरगे रोमाञ्चित और चचल होकर मानो तुम्हारे चरण (गति) को चूमती हैं। जिस भाति और जिस रूप मे तुम वहते हो लहरो की भी वही गति और वही आकार हो जाता है, अत मानो वे तुम्हारे पद-चिह्नो पर चलती है। तुम्हारा ही स्पर्श प्राप्त करके कलिया चटक कर खिला करती हैं। पेड, पौधे, तृण आदि सब तुम्हारे ही स्पर्श से सचेतन और गतिशील होजाया करते हैं।

(अप्सरा के पक्ष मे सब प्राकृतिक उपादानो का मानवीकरण होगा) ओ अप्सरे! तुम्हारे भ्रूभग की शोभा को देखकर या तुम्हारा इशारा प्राप्त करके वृक्षो (नायकों) के अधर वोलने लगते हैं और वे रोमाञ्चित हो उठते हैं। तुम्हारी चचल छवि के सामने लहरों की चचलता का नृत्य कुछ भी नही है। अत लहरे सामान्य नर्तिकायें) दासियों की भाति पैरो को चूमती है। तुम्हारे सकेत प्राप्त करके ही कलियाँ (बालायें) चटकती हैं। यौवन रूप मे विकसित होकर ज्ञात यौवनायें बना करती हैं। तुम्हारी सुन्दरता एव आकर्पण से ही तृण, तरु, पत्र आदि (प्रेमी वृन्द) सब मुग्ध होकर झूमा करते हैं।

ओ परमेश्वर! तुम्हारी प्रेरणा से ही समस्त प्राणियो मे बोलने की शक्ति होती है। तुम्हारी प्रेरणा से ही लहरो मे चञ्चलता है। तुम्हारे मौन सकेत से ही कलियाँ चटकी हैं। तिनका-तिनका और पत्ता-पत्ता तुम्हारे ही सकेत पर हिला करता है। जगत् और जीवन की प्रत्येक गति-विधि के तुम्ही प्रेरक हो।

३—हरित द्युति सायप्रात—शब्दार्थ—हरित द्युति=हरी कान्ति। अचलछोर=आचल का किनारा। सजल छवि=तरल सौन्दर्य। नीलकचु=नीले रग कचुक। चूर्ण कच=पाउडर रूपी वाल।

ओ हवा! जब तुम हरे समुद्र मे वहते हो तब तुम्हारी सत्ता का अनुमान होता है और समुद्र की तरगे वस्त्र के छोर की भाँति फडफडाती हैं। तुम्हारा स्वरूप उस समय जलमय रहता है। जब तुम आकाश मे वहते हो तो नीरूप रहते हो, आकाश की नीलिमा ही, बस, तुम्हारा स्वरूप रहता है। जब किरणें फूटती हैं तब प्रतीत होता है कि तुम्हारा गौर शरीर है। जब पराग उडा करता है और फूलो की

सुगन्धि के झोंके आते है तब भी तुम्हारी सत्ता की प्रतीति होती है, साय और प्रात तुम विशेषकर अधिक वहा करते हो।

ओ अप्सरे! साय प्रात ये मानो तुम्हारे दो पख है। जब तुम उडती हो, तब उडने वाला पराग, मानो तुम्हारी अलको से उडने वाला चूर्ण है और वहती हुई सुगन्धित श्वास होते हैं। तुम्हारा शरीर गोरा है, उस पर तुम नीला कचुक पहने रहती हो, तुम्हारी छवि वडी तरल है। हरा-हरा चचल दुपट्टा तुम्हारे स्कन्धो पर पडा रहता है जिसके दोनो छोर लहराते रहते हैं।

ओ विश्वात्मा ईश्वर! लहराते समुद्र ही मानो तुम्हारे वस्त्र है। तरल छ[illegible] वाले हो, नील कचुकि और गौर छवि वाले हो, सुगन्ध तुम्हारी श्वास है। साय-प्रात तुम्हारे चरण हैं।

१—परमात्मा की स्तुति विश्वरूप मे करने का सस्कार भारतीय परम्परा मे वैदिककाल मे ही रहा है। जैसे—"नाभ्या आसीदन्तरिक्ष शीर्ष्णोद्यौं समवर्तत पद्भ्या भूमिर्दिश श्रोत्रात्तथा लोकान् अकल्पयत्"

अर्थात् अनन्त अन्तरिक्ष उस परमात्मा की नाभि वना, आकाश सिर वना, भूमि पैर वने और दिशायें कान वनी।

४—विश्व अजात—शब्दार्थ—विश्व-हृत-शतदल=ससार रूपी हृदय-कमल। निभृत=एकान्त। भौम अहर्निशि=रात दिन। हासविलास=हँसी-खुशी। अदृश्य=अगोचर। अस्पृश्य=जो स्पर्श न किया जा सके। अजात=जन्म-मरण हीन।

ससार रूपी कमल के अन्दर मौन और एकान्त तुम्हारा निवास है। तुम्हारे ही कारण, ओ वायु! ससार के प्राणी जीवन प्राप्त करके आनन्द-विनोद किया करते है। तुम अगोचर हो, तुम्हारे अगो को स्पर्श नही किया जा सकता है, क्योंकि तुम अशरीरी हो। तुम उत्पन्न नही होते हो, अत तुम्हारा अवसान भी नही होता है।

ओ अप्सरे! तुम इतनी आकर्षक हो कि ससार के समस्त हृदय रूपी कमलो मे तुम सदा बैठी रहती हो। तुम अपनी मधुरिमा से विश्व के प्राणियो मे स्फूर्ति का सचार किया करती हो। तुम्हारे सौन्दर्य से प्रफुल्लित और आनन्दित हुए विश्व के प्राणी सदा विलासी रहा करते हैं। तुम अदृश्य और अजात हो।

ओ अनादि चेतनसत्ते! (ब्रह्म!) तुम विश्व के हृदय मे चेतना की भाति व्याप्त हो। प्राणियो की सजीवता और उनकी हँसी-प्रसन्नता सब तुम्हारे ही कारण है। तुम अदृश्य, अस्पृश्य और अजन्मा हो।

१—ये पक्तियाँ ब्रह्म के अर्थ की ओर अधिक झुकी हुई है क्योंकि नारी और वायु के लिए अस्पृश्य और अजात विशेषण इतना सगत नही जितना ईश्वर के लिए है।

२३—सुख-दुख

अवतरणिका—यहाँ पर कवि कल्पना की भाव-भूमि से उतर कर यथार्थ जगत् मे उतर आया है। वह देखता है, मानव-जीवन नाना संघर्ष और दुख द्वन्द्वो से पीड़ित है। सर्वत्र विषमता का ही साम्राज्य है। किसी के जीवन मे सुख ही सुख भरा है तो कही पर दुख ही दुख है। जग-जीवन का सन्तोष न तो एकान्त सुख की प्रचुरता मे सम्भव है और न एकान्त दु.ख की प्रचुरता मे। जीवन सुख-संतोषमय तभी हो सकता है जब सुख और दु:ख दोनो सम-विभाग मे और सम मात्रा मे बँट जाँय। दु ख का अत्यन्त अभाव भी असन्तोष का मूल है और सुख का अत्यन्त अभाव भी जीवन के माधुर्य का अवहरण कर लेता है। सुख-दुख दोनों के समान-सन्तुलन से और एकरसता से ही जीवन की परिपूर्णता होती है। काव्य-कल्पना की अपेक्षा दार्शनिक चिन्तन इस कविता का प्रधान आधार है।

१—मैं नहीं मुख—कवि कहता है कि मैं अपने जीवन मे चिर काल तक निरन्तर सुख ही सुख नही चाहता हूँ और मैं चिर काल तक निरन्तर अबाध दु ख ही दु ख भी नहीं चाहता हूँ। यह जीवन सुख और दु ख की आँख मिचौनी मे अपना मुख खोला करे। जीवन मे कभी सुख भी आता रहे और कभी अपने क्रम से दु ख भी। इस सुख-दु ख के क्रम विवर्तन से ही जीवन सरस मधुर और आकर्षक हुआ करता है।

१—सुख-दुखमय जीवन की तुलना आख मिचौनी से करने से यह अभिप्राय है कि सुख-दु ख के आने-जाने का महत्त्व केवल एक सुन्दर क्रीडा कौतुक की भाति है, जिसमे रोना-खीकना भ्रम है और अविवेक है। भगवान् ने गीता मे अर्जुन को यही उपदेश दिया है—

सुख-दु खे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥

अर्थात् सुख-दु ख दोनों को समान समझते हुए, लाभ और हानि दोनो को समान समझते हुए तथा जय और पराजय दोनो को समान समझते हुए तुम जीवन-युद्ध के लिए कमर कस लो। इस प्रकार की भावना रख कर यदि तुम युद्ध करते रहोगे तो तुम कभी शोक-ग्रस्त नहीं बनोगे और जीवन तुम्हें आकर्षक तथा सरस प्रतीत होगा।

२—सुख-दुख से ओझल हो घर्न—सुख और दु:ख इन दोनो का पारस्परिक समान मेल बडा मधुर होता है। अत मैं चाहता हूँ कि इस मधुर मेल से ही जीवन परिपूर्ण बन जाय। बिना एक दूसरे की सत्ता जीवन की अपूर्णता और एकांगिता है। ऐसी विषमता तो केवल मानव जीवन मे ही है। किन्तु प्रकृति मे सदा क्रमिकता का व्यापार चलता रहता है, अत: प्रकृति जगत् मे कितना माधुर्य है? कभी चन्द्रमा बादलो में छिप जाया करता है। तो कभी चन्द्र की कौमुदी मे मेघ विलीन हो जाया करते हैं। यही प्राकृतिक समन्वय जीवन मे भी सौन्दर्य लाता है।

रहता है, सांचे मे ढल कर वह एक विशिष्ट स्वरूप धारण करता है, उसी प्रकार ओ मन ! तू भी सुन्दर स्वरूप प्राप्त करले और मूर्तिमान आदर्श बन जा। ओ कठोर मन ! तू गल-गल के (दु खो से पिघल कर) कोमल और सम्वेदनापूर्ण बन जा।

२५—उर की डाली

अवतरणिका—कवि मानव जगत् के व्यक्ति-व्यक्ति के अन्त स्थल के भीतर प्रवेश करके जानना चाहता है कि किसके अन्दर कौन-कौन से सुख-दुख भरे पडे हैं। इस विश्व मे कांटे और फूल दोनो प्राप्त होते हैं। कोई दु खो को लेता है और कोई सुखों का सचय करता है। एक ही जीवन मे कुछ सुख भी होते हैं और कुछ दु ख भी। यहां भी कवि का आशावादी दृष्टिकोण स्पष्ट हो रहा है। उसका कथन है कि जैसे जीवन मे सुख की अनिवार्य सत्ता है वैसे ही दु.ख की भी। अत दोनो का ग्रहण समान भावना से करते हुए मानव सुखी बनेगा।

१—देखूं शूल—शब्दार्थ—कलि=कलिका। उपवन=उद्यान। अकूलै=व्याप्त। किसलय=कोमल पत्र। शूल कांटे।

कवि कहता है कि मैं सबके हृदय रूपी डाली को देखूं तो और जानूं कि किसने कौन-कौन से फूल चुने है। मैं सबके हृदयो के अन्दर झांक कर देखूं कि किस मे कौन-कौन से सुख है, ससार रूपी सौन्दर्य की फुलवाडी मे सभी प्रकार के पेड-पौधे होते हैं जिनमे कांटे, पत्ते, फूल और कलिकायें लगी रहती हैं, उसी प्रकार मानव-जगत् मे विविध प्रकार के सुखो के साथ दु ख भी रहा करते हैं।

२—किस दुराव—कवि हृदयो के भीतर झांक कर उन सुखो का श्रेणी विभाजन करना चाहता है। और विभिन्न भांति के उलझे सुखो को अलग-अलग करके उन्हे पहिचानने मे समर्थ पाता है। वह कहता है कि किस सौन्दर्य के वे फूल हैं, या वे मधु की भांति मीठे भाव हैं ? वे सुख रूपी फूल किस रूप, रग और सुगन्धि वाले हैं ? कवि से कोई बात छिपी नहीं रह सकती है। जिस प्रकार प्रकृति के उन्मुक्त उद्यान मे पेड पौधे-प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होते है उसी प्रकार कवि के सामने प्रत्येक व्यक्ति के जीवन की दशा स्पष्ट रहा करती है। "जहां न जावे रवि वहां जावे कवि।"

४—सब मे कुछ ... भूल—सबके हृदयों को परख लेने पर कवि इस परिणाम पर पहुंचता है कि सभी के हृदयो मे कछ न कुछ सुख रूपी फूल विद्यमान रहा करते हैं और साथ ही उन हृदयो में करुणा उत्पन्न करने वाले दु खो के काटे भी रहा करते हैं। सुख और दु ख इन दो भावो को कोई नही भूल सकता है। ये दोनो तत्त्व नित्य और अनिवार्य है।

२६—एक तारा

अवतरणिका—यह कविता पन्त की अन्य चुनी हुई कविताओ मे सर्वश्रेष्ठ है। इसका विषय वह एक तारा है जो सन्ध्या के समय पश्चिम क्षितिज में सर्वप्रथम अकेला दिखाई देता है। सब से पहिले कवि सन्ध्या का सुन्दर वातावरण सजीव रूप में प्रस्तुत करता है। फिर प्रकृति-वर्णन के बाद दार्शनिक क्षेत्र में उतर आता है। उस एकाकी तारे को वह ब्रह्म की भाति समझता है जो सृष्टि की अव्यक्त अवस्थामे एकाकी रहता है। ब्रह्म की जब इच्छा होती है कि "एकोऽहं बहु स्याम्" अर्थात् मैं अकेला हू अब बहुत रूप में प्रकट होऊं, तब सृष्टि की रचना होने लग पडती है और असख्य ब्रह्माण्ड, लोक और जीवो की उत्पत्ति हो जाती है। उसी प्रकार उस सन्ध्याकालीन तारे के कुछ काल पश्चात् ही सारा आकाश तारो से भर जाता है, वह असख्य नक्षत्रो का समूह मानो समस्त दृश्यमान जगत् है। कवि ने यह भी दिखाया है कि जीवन मे आकांक्षाएँ उठती हैं उनकी सफलता और विफलता पर मानव रोते या गाते हैं। कुछ दार्शनिक लोग इच्छाओ का नियन्त्रण करना ही जीवन के सुख का मूल मानते हैं। किन्तु कवि कहता है कि इच्छाओ का बन्धन बडा दुस्तर है। ब्रह्म भी आकाक्षा का बन्धन नही कर पाता है "एकोऽहं बहुस्याम्" की आकाक्षा उनके हृदय मे भी उदित होती है। अत मानवो मे इच्छाओ के समुदय की वृत्ति उस ब्रह्म मे ही बीज रूप मे सक्रात होकर आई है। इस कविता मे भी आशावादी दृष्टिकोण है। कामना, और इच्छाओ को कोई दु ख का मूल समझते हैं, परन्तु कवि उनमे भी ब्रह्मगत तत्त्व के दर्शन करता है और उन्हे अपना लेने मे ही श्रेय समझता है।

१—नीरव सन्ध्या ... आर पार—शब्दार्थ—आनत=झुका हुआ। गोपथ=वह मार्ग जहाँ से गायें वन आया जाया करती हैं। भुजग=साप। धूमर=धुंधला। जिह्म=टेढा-मेढा। प्रखर=तीक्ष्ण। उदार=लम्बा चौडा। आकाक्षा=इच्छा, कामना। आरपार=एक ओर से दूसरी ओर तक।

सारा ग्राम-प्रान्त मौन सन्ध्या के अन्धकारमय वातावरण मे डूबा हुआ है। वृक्षो के अधर रूपी पत्ते नीचे झुके हुए हैं और उनमे मर्मर ध्वनि शान्त हो गई है। प्रतीत होता है कि बजती हुई वीणा के स्वर उसके तारो मे ही लीन हो गये हों। पक्षियो की चहचहाट भी अब लीन होती जा रही है। जो मार्ग अब तक गायो के आने-जाने से धूलि पूर्ण था वह भी अब निर्जन और धूलि हीन हो गया है

और अन्धकार मे कुछ धुंधला दिखाई दे रहा है मानो टेढा-मेढा साप थककर सोया पडा हो। सर्वत्र प्रशान्ति छाई हुई है। उस प्रशान्ति के बीच मे केवल झिंगुर का प्रखर शब्द सुनाई पड रहा है जिससे वह शान्ति ऐसे भग हो रही है जैसे पैने तीर मे कोई चीज छिद जाती है। झिंगुर के स्वर से भरा मौन वातावरण और भी गभीर हो रहा है। सन्ध्या के व्यापक शान्तिमय वातावरण के भीतर झिंगुर का निरन्तर स्वर ठीक उसी प्रकार उठ रहा है जिस प्रकार एक उदार हृदय वाले व्यक्ति के भीतर कोई महान् आकांक्षा उठती है और वह इतनी प्रवल होती है कि उसका हृदय आरपार विध जाता है।

१—"अधर सो गया," इन प्रयोगो से वृक्षो और मर्मर ध्वनि का मानवीकरण हुआ है।

२—"महा प्रशान्ति" का मानवीकरण होकर चित्र यो उपस्थित होना है कि झिंगुर व्याधा तीक्ष्ण तीर छोड कर महाप्रशान्ति रूपी तपस्विनी को आरपार वेध देता है, फिर भी उसके हृदय मे कोई प्रतिक्रिया या प्रतिहिंसा नही उठ रही है, क्योकि वह महा प्रशान्ति ही है। वह और भी अधिक गम्भीर मुद्रा धारण कर लेती है।

उस महाप्रशान्तिमयी तपस्विनी का हृदय "वसुधैव कुटुम्बकम्" जैसा उदार हो चुका है फिर भी उसकी इच्छायें मरी नही हैं। उसके हृदय मे एक ऐसी चिरकाल से उठी हुई आकाक्षा है जो उसके हृदय को वेधे डालती है। जितना बडा हृदय उतनी ही बडी इच्छा ऐसी कहावत ही है।

३—कवि आकाक्षा से ही कविता को आरम्भ करता है और अन्त भी आकाक्षा के विवेचन मे ही करता है।

२—अब हुआ　　तम श्यामल—शब्दार्थ—सान्ध्य-स्वर्णाभ=सन्ध्या की सुवर्ण-सी आभा। स्वर्णातप=लाल रङ्ग का कमल। दल=पंखुडी। प्रखर शिशिर=तेज जाडा। स्वर्ण विहग=सुवर्ण सा पक्षी अथवा धूप।

अब सन्ध्या की स्वर्णिम आभा विलीन हो गई है। चारो ओर ऐसा

सज्ञा के रूप मे प्रयुक्त हुआ है। वस्तुत "सान्ध्य-स्वर्णाभ" इसका शुद्धरूप है और यही वाच्य भी है।

२—बहते जल मे कमल नही उगा करते हैं। अत कमलो का कुम्हलाना अन्यत्र सरोवरो मे विवक्षित है और गगा मे किरणो का कुम्हलाना विवक्षित समझना चाहिये।

३—"नव नील नील" विशेषण व्यर्थ है। क्योकि "तम श्यामल" कह दिया गया है।

३—पश्चिम नभ निर्धन—शब्दार्थ—ज्योतित विवेक=उज्ज्वल ज्ञान। टेक=लगन। स्वर्णाकाक्षा=सुनहली उच्च आकाक्षा। मुक्तालोकित=मोती की चमक से प्रकाशित। रजत सीप=चाँदी के समान शुभ्र सीपी। चिर-घन=असीम सनातन चैतन्य (चिद्घन)।

कवि कहता है कि ऐसे सन्ध्या के वातावरण मे एक अकेले उज्ज्वल और निरन्तर टिमटिमाते नक्षत्र को पश्चिम आकाश मे देख रहा हूँ। वह नक्षत्र ऐसा निर्मल और अनिन्द्य है मानो उज्ज्वल विवेक की साकार प्रतिमा हो। वह नक्षत्र ऐसा स्थिर है जिस प्रकार हृदय मे जमा हुआ अमर लगन या दृढ सङ्कल्प स्थिर रहता है। वह विश्वात्मा के हृदय की मानो कोई अमर टेक दीप्त हो रही है वह नक्षत्र किस सुनहली कामना रूपी दीपक को लिये हुए है? और वह दीपक किस की पूजा के लिए किसके समीप मे बैठा है? वह किस से क्या चाह कर रहा है जबकि उसके अतिरिक्त किसी अन्य की सत्ता ही नहीं है? वह ऐसा सुन्दर लगता है जैसे मोती की आभा मे चमकीली चाँदी की सीप हो। क्या उसकी आत्मा का चैतन्य पलको को स्थिर खोल कर कुछ गम्भीर चिन्तन मे लीन है? और कही अपने अपनेपन को ढूढ रहा है? क्या वह यह चिन्तन कर रहा कि अपना आत्मीय कहा जाने वाला भी मेरा कोई कहीं है? वह तारा ब्रह्म की भाति एकाकी है। अपनापन तो उसके लिए दुर्लभ है, क्योकि यह समस्त विश्व उसे निर्जन लग रहा है। किसी अन्य का अस्तित्व ही नही है। अपनेपन की प्राप्ति की उसकी इच्छा निष्फल हो रही है, अत वह भी अपने को निर्धन समझ रहा है, किसी अभाव का वह अनुभव कर रहा है।

४—आकाक्षा न पार—शब्दार्थ—उच्छ्वसित=उमडता हुआ। उद्वेलित=विक्षुब्ध। अहरह=नित्य-प्रति। अबाध=बेरोक टोक। दुस्तर=कठिन। निसग=उदासीन, प्रेमहीन। मूकभार=वह बोझ जो किसी से कहा नही जा सकता है। विषाद=दुख।

जब हृदय मे आकाक्षा उठती है तब उसका इतना प्रबल वेग रहता है कि सारा विवेक और बन्धन ढीले पड जाते है। विश्व प्रकृति का प्रत्येक पदार्थ आकाक्षा से ही गतिशील है। नित्यप्रति समुद्र थरथर काँपता रहता है और आलोडित होता रहता है जिसका कारण भी आकाक्षा ही है। लहरे भी किसी आकाक्षा से ही हहर-हहर कर नाचा करती हैं। सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र-समूह सभी चिर आकाक्षा मे ही अबाध गति से चक्कर लगाते रहते हैं। हे तारे! क्या तुम्हारे प्राण

भी किसी आकांक्षा के मारे जलकर विकल हो रहे हैं। फिर भी तुम अपनी आकांक्ष को कह नहीं पा रहे हो, अतः चुपचाप बैठे हो। तुम्हारी मौन आँखें क्या इसी शो से अश्रुपूर्ण हो रही हैं ? ओ तारे ! निःसंग या उदासीन जीवन तो व्यर्थ है और विफ है। अकेलापन तो अन्धकार की भाँति होता है। यह एक ऐसा असह्य भार होता जो व्यक्त भी नहीं किया जा सकता है, तुम भी अकेले हो। एकाकीपन का विषा अनन्त है उसका कहीं पार नहीं है।

५—चिर अविचल वह सम—शब्दार्थ—छन्दबन्ध=कविता। असङ्ग=तटस विरक्ति। निष्कम्प शिखा=दीपक की निश्चल लौ। प्रबुद्ध=चैतन्य। मीन=मछली

वह तारा चिरकाल से निश्चल बैठा हुआ है और तेज से चमक रह है। वह कविता नहीं जानता है अन्यथा वह अपने शोक का वर्णन कर पाता। व अनन्त आकाश रूपी समुद्र का स्वतन्त्र मीन है। उसे न किसी से लेना है न देना अपने नीरस एवं अनासक्त भाव में ही सुखी रहता है। अपने ही स्वरूप में स्थिर रहत हुआ चिर नवीन रहता है, अविकृत रहता है। निष्कम्प दीप की लौ की भाति अ नीय है और संसार के अज्ञान रूपी अन्धकार का भेदन करता रहता है। वह ब्रह्म व भाति है जो शुद्ध प्रबुद्ध, स्वच्छ और सदा समरस रहता है।

६—गुञ्जित अलि जगदर्शन—शब्दार्थ—अलि=भौंरा। मधुमय=मधु से भर सुन्दर। जगदर्शन=दृश्यमान जगत्।

यह घना अन्धकार गूंजते हुए भौंरे के समान मधुमय लगता है। प्रतीत होत है कि अकेला भौंरा एकान्त में मधुसंचय में गूंज रहा है। तब वह तारा अपनी व्यथ के भार को कुछ-कुछ हल्का समझता है। क्योंकि एकाएक आकाश का प्राङ्गण प्रच मात्रा में सुन्दर कलियों की भाति असंख्य नक्षत्रों से लद गया। प्रतीत होता है ि यह तारा व्यापक आत्मतत्त्व है और असंख्य ताराओं का समूह दृश्यमान जगत् व विस्तार है।

२७—नौका विहा

अवतरणिका—प्रस्तुत कविता वर्णनात्मक है। इस कविता के रचनाकाल कवि कालाकांकर की राजधानी में था जहाँ एकबार उसे गंगा में नौका विहार क अवसर मिला। ग्रीष्म की चाँदनी रात में नौका विहार करते हुए कवि कालाकांक के राजभवन के पास पहुँचता है। प्रासाद के वर्णन के साथ वेगमयी नौका, तरंग ए रात्रि के शान्त वातावरण का सुन्दर चित्र कवि ने उपस्थित किया है। अन्त में कवि [illegible] दार्शनिक हो जाता है और जीवन प्रवाह में नौकाविहार [illegible] करने लगता है। [illegible] भी गंगा प्रवाह की भांति गतिशील ए [illegible] है। वातावरण के प्रस्तुत करने में सुन्दर चित्रात्मकता है। सर्व प्रथम रात्रि [illegible] का वर्णन है।

१—शान्तस्निग्ध मृदुल लहर—शब्दार्थ—स्निग्ध=तरल या प्रेममयी। अपलक=एकटक या तारो से पूर्ण। अनन्त=आकाश। सैकत शय्या=रेतीले तट की सेज। दुग्धधवल=दूध की भाति स्वच्छ। तन्वगी=कृश शरीर वाली या पतली धारावाली। ग्रीष्मविरल=गर्मी के कारण सिकुडी हुई या गर्मी के कारण शिथिल पड़ी हुई। श्रान्त=थकी मादी। क्लान्त=पसीने से भरी। तापस वाला=तपस्विनी वालिका। कुन्तल=वाल। वर्तुल=गोलाकार।

आकाश शान्त और चादनी से भरा हुआ स्निग्ध उज्ज्वल था। तारे छिटके हुये थे मानो अनन्त (आकाश) अपनी अनन्त आखो से मौन पडे भूतल को अपलक निहार रहा था। रेतीली भूमि पर ग्रीष्म के कारण सिकुडी हुई गगा वह रही थी। वह कृशागी हो गई थी, अत दूध की भाति स्वच्छ शय्या पर थकी मादी शान्त और निश्चल लेटी विश्राम कर रही थी, वह गगा एक तपस्विनी वालिका की भाति लगती थी। वह निर्मल थी। चन्द्रमा रूपी मुख उसके लहर रूपी मृदुल हथेली पर टिका हुआ था और उसके हृदय पर किरणो के कोमल वाल लहरा रहे थे। उसके गोरे अगो पर रोमाच हो रहा था और ऊपर का नीला आकाश सिलम-सितारे से जटित नीले वस्त्र की भाति लहरा रहा था। चन्द्रमा की किरणें लहरो पर पड रही थी, प्रतीत होता था कि रेशमी साडी पर सिकुडनें पड रही थी जो प्रतिपल झलमला रही थी।

१—गगा का मानवीकरण विलकुल स्पष्ट है। उसको यहाँ कवि ने तापस-वाला का रूप दिया है जो थकी-माँदी रुग्ण-सी होकर विश्राम कर रही है। उसकी परिचर्या करने वाला अनन्त (आकाश) सहस्रों नेत्रो को खोले जाग रहा है।

२—तापसवाला कभी रेशमी और मीनाकारी के वस्त्रो को नही पहना करती है। उसका जीवन वडा पवित्र एव वासना हीन होता है, उसका ऐसा रेशमी शृगार का वर्णन करके तपस्वी जीवन को कलक देना है। साथ ही "अनन्त" (नायक) भी "स्निग्ध" (प्रेमपूर्ण) है जो टकटकी लगाये उसके सौन्दर्य से तृप्त नहीं हो रहा है। तपस्विनी का ऐसा वासनामय चित्रण चिन्त्य है। तापस वाला का रूप देखना हो तो कालिदास की शकुन्तला को देखिये जो वल्कल वस्त्रों मे भी अलौकिक सौन्दर्य से पूर्ण है।

"इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी"। कवि की तापसवाला सभवत आधुनिक युग की है तो बात दूसरी है।

२—चाँदनी रात का ....और छोर—शब्दार्थ—सत्वर=शीघ्र। सस्मित=मुसकाती हुई। मन्थर=काँपती हुई। तरणि=नाव। शुचि=स्वच्छ। रजत पुलिन=चाँदी-से चमकीले तट।

चादनी रात का पहिला पहर था। हम शीघ्र नाव लेकर चल पडे। उस समय रेत पर पडी चाँदनी ऐसी प्रतीत होती थी कि सीपी के अन्दर मोती का प्रकाश जगमगा रहा हो। वस कुछ ही देर मे नाव की पालें चढ गई और लगर खुल गया। हमारी छोटी-सी नाव मन्द-मन्द गति से कापती हुई चल पडी। उसकी

पालें खुली थी। प्रतीत होता था कि शुभ्र हंसिनी अपने पंख खोल कर जल में तैर रही हो। चांदी के से चमकीले तट गंगा के निश्चल और स्वच्छ जल के दर्पण में प्रतिबिम्बित होकर कुछ क्षण के लिए दुहरे ऊँचे लग पड़ते थे। उसके तट पर स्थित कालाकांकर का राजभवन निश्चित होकर जल में सोया हुआ था। उसकी पलकों में वैभव के स्वप्न राशि-राशि में भरे हुए थे। नाव के चलने के कारण जल से हिलोर उठ रही थी। जिससे प्रतीत होता था कि आकाश के ओर-छोर हिल रहे हों, (चलती गाडी में जैसे भूमि चलती दिखाई देती है)।

१—राजभवन का मानवीकरण है। "प्रतिबिम्बित था" ऐसा सीधा न कहकर "जल में सोया" प्रयोग मानवीकरण के वश में किया गया है। इसीलिए "स्वप्न देखना" विशेषण भी सार्थक हो जाता है।

३—विस्फारित नयनों ...... रुक रुक—शब्दार्थ—विस्फारित=आंखें फाड-फाडकर। अन्तस्तल=हृदय। अविरल=घने घने। तिर्यक् मुख=तिरछा मुख।

चचल तारों के समूह जल के हृदय में प्रकाश डालकर निश्चल आखें फाडते हुए कुछ खोज से रहे थे। लहरों में तारों का प्रतिबिम्ब झलमला रहा था, लगता था कि लहर रूपी बालायें तारों के दीपकों को अपने आंचल में लुका-छिपा रही हों। सामने के आकाश में शुक्र तारे की कान्ति झलमला रही थी। जो जल में परी की भांति तैरती थी और सुन्दर बालों की ओट में फिर छिप जाया करती थी। दशमी तिथि का चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब भी चचल लहरों पर पड रहा था। प्रतीत होता था कि घूंघट की ओट से मुग्धा का मुख बारबार दिखाई पड रहा हो।

१—इस पद में कई चित्रों की सृष्टि है। नक्षत्रों का मानवीकरण है। वे खोये-खोये से आखें फाडकर कुछ ढूंढ रहे हैं।

२—लहरें उन युवतियों के रूप में चित्रित है जो घनी कतार में चल रही हैं और आंचल में प्रज्वलित दीप छिपाये हैं।

३—शुक्र की छवि जो जल में प्रतिबिम्बित हो रही है और चचल लहरों में झलमला रही है, उसे परी के रूप में चित्रित किया है। वह अपने घने बालों के बीच लुकती छिपती जा रही है।

४—दशमी के चन्द्रमा का चचल प्रतिबिम्ब मुग्धा का मुख है जो घूंघट की ओट में तिरछा दिख रहा है और अधूरे से कुछ अधिक दिखाई दे रहा है। दशमी का चन्द्र अर्धवृत्त से कुछ बडा और पूर्ण वृत्त से कुछ छोटा होता है; अत घूंघट में छिपे मुख के लिए दशमी का चन्द्र बहुत उपयुक्त उपमान है।

४—अब ...... कोकी को विलोक—शब्दार्थ—चपला=चचल। कगार=किनारा विटपमाल=वृक्षों की पंक्ति। भ्रू-रेखा=भौंहों की रेखा। अराल=टेढी। ऊर्मिल= लहरों से भरा। प्रतीप=उलटा। कोक=चक्रवाक। कोकी=चक्रवाकी।

अब नदी के बीच की चचल धारा आ पहुँची है। चांदनी में चमकता हुआ तट अब छिप गया है। धारा का कृश और कोमल शरीर तट से अब केवल दो हाथ की दूरी पर है और आलिंगन करने को मचल रहा है। बहुत दूर क्षितिज पर

वृक्षो की पक्ति टेढी भौं की रेखा सी प्रतीत होती है और विशाल नीला आकाश नीली आख की भाँति दिखाई पडता है। धारा के बीच मे एक छोटा-सा द्वीप है जो लहरीले जलप्रवास को रोककर कुछ दूर तक उलटा कर रहा है। प्रतीत होता है कि मा की गोद मे बच्चा सोया है जिसका ममत्व और वात्सल्य माँ के अनेक अन्यान्य भाव-प्रवाहो को रोक रहा है। बालक की ममता माँ को अन्यान्य भावना-प्रवाह मे नही बहने दे रही है। अरे वह उडने वाला कौन पक्षी है ? क्या यह कोई चक्रवाक अपनी परछाई को चकवी समझकर उसके पीछे उडकर अपना विरह-शोक भूलने का प्रयास कर रहा है।

१—इस पद्य में शृङ्गार और वात्सल्य का द्वन्द्व प्रस्तुत किया गया है जिसमे वात्सल्य की प्रबलता बताई गई है। धारा का मानवीकरण है, वह युवती और मा के रूप में चित्रित है, उसमें मातृत्व और शृङ्गार दोनो है, एक ओर मानवीकृत (नायक) अपनी नीली आँखें फाडे कृशाङ्गी धारा (नायिका) के आलिंगन के लिए अधीर हो रहा है, दूसरी ओर धारा (नायिका) की गोद मे बच्चा सोया है, बच्चे की निद्रा भग न हो या उसे कोई कष्ट न हो इसलिए धारा (माँ) रतिभाव के प्रवाह को उलट देती है। उसका अभाव अपने मे नही होने देती है। मातृत्व का कैसा यथार्थ चित्रण है ? वे गृहस्थ युवक भली-भाँति जानते होगे कि जब गोद मे बच्चा सोया रहता है तब मा को बच्चे के सुख का अधिक विचार रहना है अपेक्षाकृत अन्य कार्यों के। "उर्मिल प्रवाह को कर प्रतीप" इससे अच्छी अभिव्यक्ति उपर्युक्त भाव के लिए और क्या हो सकती है ?

५—पतवार . सहोत्साह—शब्दार्थ—प्रतनु=हल्का। फेनाकार=बडे-बडे बुलबुलो वाले झाग। सहोत्साह=उत्साह पूर्वक।

पतवार घुमा दी गई। नाव का भार बहुत हल्का था, अत वह धारा के विपरीत चलने लगी। नाव डाडो रूपी हाथो को पसारे, बडे-बडे बुदबुदो वाले झागों के मोतियो को भर-भर कर हार बिखरा रही थी। चन्द्र-किरणें चचल लहरो की रेखाओ मे खिची हुई थी, प्रतीत होता था कि चाँदी के साँप रेग रहे हो। लहरो की चचल लताओ मे सौ-सौ चन्द्रमा और सौ-सौ नक्षत्र झिलमिलाते हुए मोती के गुच्छो वाले फूलो की भाँति फैले हुए थे। अब नदी का प्रवाह कुछ उथला हो गया। डण्डे से स्वभावत जल की गहराई नापी जाने लगी। हम उत्साहपूर्वक घाट की ओर बढ़ने लगे।

१—शब्द-चित्रो की मनोरम छटा इसमे दर्शनीय है।

६—ज्यों ज्यो . अमरत्ववान—शब्दार्थ—शाश्वत=सदा जारी रहने वाला; सनातन। उद्गम=उत्पत्ति। रजत हास=चाँदी की भाँति शुभ्र हँसी। विलास=खेल। कर्णधार=नाव चलाने वाला नाविक। प्रमाण=परिमिति, सीमा। अस्तित्व=सत्ता, जीवन। अमरत्वदान=अमरता की प्राप्ति।

नाव ज्यो-ज्यो पार लगती जाती थी त्यो-त्यो हृदय मे सैकडो विचार उत्पन्न होते जाते थे। इस ससार का क्रम भी इसी धारा की भाँति है। इस धारा की भाँति

ही निरन्तर गतिशील जीवन की उत्पत्ति होते जाना है। इसकी गति भी अप्रतिहत है और नदी मे जिस भाँति अनेक संगम आ जाया करते हैं उसी प्रकार जीवन में भी कितने ही अन्य प्राणियो मे एक प्राणी का पारस्परिक सम्पर्क होता रहता है। आकाश की नीलिमा का विकास भी शाश्वत है। चन्द्र की शुभ्र हँसी भी शाश्वत है। छोटी-छोटी लहरो की क्रीडा भी शाश्वत है। हे जग-जीवन के नाविक, ईश्वर ! जन्म और मृत्यु रूपी दो तटो के बीच बहती जीवन-सरिता मे हम लोगो को तुम सदा नौका विहार कराया करते हो। जैसे प्रस्तुत नौका-विहार के आनन्द मे विभोर हुआ मैं अपने अस्तित्व-ज्ञान को भूल गया हूँ। मैं क्या, कौन, कहाँ हूँ आदि विचार भूल गया हूँ। उसी प्रकार इस जीवन मे भी हम लोग अपने आत्मा के यथार्थ ज्ञान को भूलकर सासारिक बातो में मग्न रह जाया करते हैं। ज्यो ही आत्मा का यथार्थ ज्ञान हो जाता है त्यो ही जीवन का अन्त या मुक्ति हो जाती है, अर्थात् जीवन की सीमा वही तक है जहाँ तक हम सासारिक वातावरण मे खोये रहते हैं। आत्म-ज्ञान के पश्चात् अमरत्व की प्राप्ति हो जाती है। जिस प्रकार तट के समीप आने पर नौका-विहार से मुक्ति मिल जाया करती है उसी प्रकार मानव मृत्यु एव आत्म-ज्ञान के पश्चात् जीवन मुक्त हो जाता है।

१—इस समस्त गीत मे यही पद सारभूत है। कवि इतनी लम्बी चौडी पीठिका मे क्या विचार रखना चाहता है यह बात इस पद से ज्ञात हो जाती है। मानवजीवन की नौका विहार से और ईश्वर की कर्णधार से तुलना की गई है। अब तक कितने ही मधुर-मधुर चित्रो को प्रस्तुत करता हुआ कवि अन्त मे दार्शनिक बन जाता है, आरम्भ से पढते-पढते पाठक को उत्तरोत्तर जिज्ञासा उठती चली जाती है कि कवि का मुख्य विवक्षित विचार क्या है ? बीच-बीच मे सन्देह भी होने लगता है कि पन्त सा सिद्ध कवि क्या सातवी-आठवी कक्षा के छात्र की भाँति "नाव की सैर" (Journey by boat) विषय पर पद्यमय वर्णनात्मक निबन्ध तो नही लिख रहा है ? किन्तु अन्त का पद सब समाधान कर देता है।

२८—चाँदनी

अवतरणिका—यह कविता भी दार्शनिक है। कवि ने चाँदनी को नारी सत्ता के अनेक रूपो मे चित्रित किया है। चाँदनी मे वह असीम चिरन्तन शक्ति का आभास देखता है। प्रत्येक पद मे नारी का एक भिन्न मनोहर चित्र है। उत्प्रेक्षाओ की भरमार है।

१—नीले नभ .... जग-जीवन—शब्दार्थ—शतदल=कमल। शरद् हासिनि=शरद् ऋतु की भाँति स्वच्छ हँसी वाली और शरद् की चाँदनी। अनिमिष=अपलक। एकाकिनि=अकेली। स्वप्न जडित=अन्तर्गत विचारो मे मग्न और मीठी नीद देने वाली।

नीले आकाश रूपी कमल पर बैठी हुई शरद् की भाँति स्वच्छ हँसी वाली,

अपनी कोमल हथेली मे अपना चन्द्रमुख रखे, मौन, अपलक और अकेली वह चाँदनी रूपी नारी विचारो मे मग्न है। उसकी पलकें झुकी हुई हैं। अपनी कान्ति से समस्त चराचर के मन को वह आकृष्ट कर लेती है। उसकी चितवन बडी श्यामल, कोमल और चचल है जिससे जगत् के प्राणियो मे स्फूर्ति का सचार होता है।

२—वह दिशिदल—शब्दार्थ—दल=पत्र, पखुडिया। कुड्मल=कलिका। दिशिदल=दिशा रूपी पत्ते।

वह फूले हुए वेला के वन की भाति है। अन्तर इतना है कि वेला के पुष्प की भाति इसके नाल, पखुडियो और कलिकायें नही हैं। केवल चिरस्थायी निर्मल विकास ही विकास है। वह इतनी फूली हुई है कि दस दिशा रूपी उसके पत्ते सब ढक गये हैं।

३—वह सोई स्पन्दन—शब्दार्थ—सरित-पुलिन=सरिता का तट। स्पन्दन=हृदय की धडकन।

वह एक नदी के तट पर सोई हुई है। रुक-रुक कर बहने वाली हवा मानो उसका श्वास-प्रश्वास है। नदी की छोटी-छोटी छोटी लहरें मानो उसके हृदय की धडकन हैं।

४—अपनी छाया लहर पर—वह अपनी कान्ति में छिपी हुई पर्वत शिखर पर खडी हुई है। समुद्र के तरगो मे प्रतिविम्बित होने वाली उसकी ही कान्ति सैंकडो रूप धारण कर के नृत्य कर रही है।

५—दिन की मरमर—शब्दार्थ-निशिनिभृत=रात्रि के मौन एव एकान्त।

प्रतीत होता है कि दिन की आभा ही नई दुलहिन बनकर रात्रि के मौन और एकान्त शय्या पर आयी है। उसका सौन्दर्य छुई मुई की भाति कोमल है। वह कोमल और मीठा लाज से मानो मरी जा रही है। चाँदनी रात मे वृक्ष-पत्रो की मर्मर ध्वनि मे मानो उसकी लज्जा व्यक्त हो रही है।

१—"मरमर" शब्द मे श्लेष है। वधूपक्ष मे इसका अर्थ लाज से मरना होगा और चाँदनी पक्ष मे पत्रो की मर्मर ध्वनि।

६—जग के अचल—वह ससार के रहस्यमय स्वप्नो का हार प्रतिक्षण गूँथती जाती है। वह सदा दयाशील रहती है। उसका आचल सदा ओस रूपी आसुओ से गीला रहता है। वह वहुत करुणामयी नारी है।

७—वह मृदु उडुगन—वह कोमल कोमल कोपलो के मुख मे मोतियो के चुम्बन भरा करती है। प्रतीत होता है कि मा बच्चे के मुख को चूम रही है और उसके मोती मे दाँत झलक रहे है। अर्थात् चाँदनी कलियो मे ओस वरसाती है। वह लहरो के चचल हाथो मे चाँदनी की भाँति चमकीले जुगनू रख देती है। प्रतीत होता है कि माँ बच्चों के चचल हाथों मे चाँदी के छोटे-वड़े सिक्के रख रही हो।

८—वह लघु ... तटस्थल—शब्दार्थ—परिमल=सुगंध । अविरल=महज रूप में । उर तटस्थल=हृदय रूपी किनारा ।

वह भीनी-भीनी सुगन्ध से बनी बादल की माला है जो स्वभावत हवा में घुलमिल जाती है । अथवा वह सुख रूपी उमडते हुए समुद्र की भांति है जिसमें हृदय रूपी किनारे का भाग लबालब डूब जाता है ।

९—वह स्वप्निल ... गुंजन कल—शब्दार्थ—शयन मुकुल=शयन व्यापार रूपी कलिका । द्युतिदल=कान्ति की पखुडियाँ । जीवन गुंजन=जीवन रूपी गुंजार । अलि=भौरा ।

चाँदनी में जगत् के सब प्राणी सो जाते हैं । अत वह मानो शयन क्रिया रूपी एक कली है जो स्वयं भी स्वप्न से भरी हुई है । इसीलिए दिन की कान्ति रूपी पखुडियाँ या पलकें उसकी मुंदी हुई हैं । जगत् रूपी भौंरा उसके अन्दर बन्द हो गया है । जगत् की सुषुप्ति में भी जीवन का अस्तित्व मानो उसका गुंजार है ।

१—ये पंक्तियाँ कुछ पेचीदी-सी इसलिए लगती हैं कि अमूर्त भावों को मूर्त रूप दिया गया है । शयन एक व्यापार है, भाव वाचक है, किन्तु उसकी तुलना मूर्त मुकुल से दी गई है । जीवन भी एक व्यापार है उसकी तुलना गुंजार से की गई है । परम्परागत उपमानो की लकीर पीटने के पन्तजी सदा विरोधी रहे हैं ।

१०—वह नभ . .समर्पण—शब्दार्थ—स्नेह-श्रवण=प्रेमपूर्ण वार्ता को सुनना । गोपन सम्भाषण=गुपचुप बातें करना ।

वह आकाश रूपी प्रियतम की स्नेहपूर्ण बातें सुनती रहती है और दिशाओ को छिपाने के व्याज से मानो गुपचुप बातें करती रहती है । जब अपने प्रियतम की आँखों से उसकी आँखें मिलती हैं तब वह अपना मधुर समर्पण कर देती है । प्रस्तुतार्थ यह है कि चांदनी मे आकाश स्नेहपूर्ण (चिकना) लगता है । दिशायें सब ढक जाती हैं । दर्शको की आँखें जब चाँदनी का अवलोकन करती है तो उसी ओर लगी रह जाती हैं । दर्शक अपनी आखो को आत्मसमर्पण कर देते हैं ।

११—वह एक ... अन्तर—शब्दार्थ—ससृति=सृष्टि । असीम सुषमा=अनन्त सौन्दर्य । अन्तर=किनारे ।

परब्रह्म के विशाल आकाश रूपी हथेली पर रखी हुई वह सृष्टि की एक बूंद है जिसमे समस्त ब्रह्माण्ड के ओर-छोर डूबे हुए है । इस सृष्टि रूपी बिन्दु के अनन्त सौन्दर्य मे समस्त विश्व समाया हुआ है ।

१—इसमे रहस्यवाद की बडी व्यापक भावना है । आशय यह है कि सृष्टि का सौन्दर्य एक अनन्त समुद्र की भाँति विशाल है । चादनी मानो उसकी एक छोटी बूंद है जो परब्रह्म की विशाल हथेली पर चिपकी हुई है । परब्रह्म की असीम व्यापकता का भी इससे अनुमान व्यक्त होता है कि जिसकी हथेली आकाश हो वह स्वय कितना विशाल होगा ।

१२—झंकार . . . . आशय—शब्दार्थ—अविदित=दुर्बोध्य। शब्दमुक्त=शब्द हीन या अनिर्वाच्य। शुद्ध=शुचि। आशय=अर्थ अभिप्राय।

विश्व की जीवन रूपी झकार धीरे-धीरे लीन होती जाती है। जिस प्रकार वीणा के तारो की झङ्कार आघात के पश्चात् धीरे-धीरे लीन होती जाती है, अन्त मे बिलकुल शब्द नही बचता है। बचती है केवल उस झङ्कार की भावात्मक स्मृति-मात्र। उसी भाँति यह विश्व का जीवन भी धीरे-धीरे प्रलय की ओर बढता जाता है, अन्त मे सब कुछ विलीन हो जाता है, अन्त मे बचता है केवल शून्य या अभाव। प्रलय मे लीन विश्व की एक प्रकार की स्मृति शेष रह जाती है और एक व्यापक असीम चेतन सत्ता का ही अवशेष रह जाता है, जो केवल भावमय है, शब्द हीन है और है अनिर्वाच्य। वही अन्त मे अवशिष्ट रहनेवाला परब्रह्म का अस्तित्व या असीम चेतना का भावमय अस्तित्व ही विश्व का शुद्ध सारभूत तत्त्व है, यह प्रतीयमान विश्व की स्थूलता तो झङ्कार की भाँति नश्वर है। यह चाँदनी भी ब्रह्म की व्यापक चेतन सत्ता है क्योकि इसमें समस्त विश्व का जीवन धीरे-धीरे सो गया है। शेष केवल ब्रह्म की भाँति यही बची है। इसका रहस्य किसी को ज्ञात नही हो सकता है क्योंकि यह शब्द मुक्त है, मौन है, शुचि आशय वाली है।

१—झङ्कार के लीन होने पर उसकी एक भावमयी स्मृति का शेष रह जाना ऐसा भाव अग्रेजी कवि शैली के इन शब्दो मे भी है—The memory of the music fled। शैली की यह शब्दावली भी चाँदनी के लिए ही आई है।

१३—वह एक . नयन क्षण—शब्दार्थ—साश्रुनयन=अश्रुपूर्ण आखो वाला।

वह कभी न समाप्त होने वाली प्रतीक्षा की भाति नीरव, अपलक आँखो वाली है, (प्रतीक्षा मे व्यक्ति मौन और निनिमेष रहता है)। वह जीवन की ऐसी करुणापूर्ण घडी है जब आँसू से आखें भरी रहती है। प्रतीक्षा एव घडी दोनो ही अदृश्य एव अस्पृश्य हैं, अत वह भी अस्पृश्य है और किसी निश्चित रूप रेखा से विहीन है।

१—चाँदनी को अस्पृश्य कहने का आशय यह है कि इसका स्पर्श करने पर इसकी शुभ्रता का असर बचा नही रहता है और इसे पकडा नही जा सकता है। अदृश्य कहने का तात्पर्य है कि यह कितनी लम्बी-चौडी, गोल, टेढी या हाथ पाव वाली किस रूप की है यह कुछ भी विदित नही होता है—अत प्रतीक्षा और समय की भाति यह भी भाव-स्वरूपा है।

१४—वह शशि सुन्दर—वह चुपके से चन्द्र की किरणो द्वारा मेरे आँगन मे उतरी और हृदय की सुन्दरता मे खो गई, क्योकि वह अपनी ही आभा से अनन्य सुन्दरी थी।

१५—वह खडी उज्ज्वल—वह मेरी आँखो के सामने खडी हुई, किन्तु उसी समय उसका सब रूप, रग और आकृति रेखा सभी कुछ उसका ओझल हो गया। वह केवल हृदय की अनुभूति मात्र-सी मेरे हृदय मे समा गई, क्योकि हृदय मे

पर न्यौछावर है। प्रकृति की सब वस्तुएँ तुम्हारे उपयोग के लिए खुली हुई हैं। तुम्हारा रूप-रग छाया और प्रकाश की भाँति उज्ज्वल एव श्यामल है।

२—धावित शिख शोभन—तुम्हारी पतली-पतली नीली नसो मे मदिरा की भाँति मादक रुधिर का सचार निरन्तर होता रहता है। तुम्हारी दो आँखे अनन्य सौन्दर्य की सृष्टि हैं। तुम्हारे स्वर मे स्वाभाविक सगीत का सार भरा हुआ है। तुम्हारा वक्ष-स्थल वडा विशाल है, तुम्हारी छाती का स्तनमण्डल का भाग सरोवर के कमल की भाँति सुन्दर है। लम्बी-लम्बी दो दृढ भुजायें प्रेम बन्धन के साधन हैं। जीवन रूपी वृक्ष का मोटा तना तुम्हारा विशाल धड है, और हाथ, पाँव, अगुलि, नख, शिख ये सब अग जीवन-वृक्ष के डाल पत्ते पुष्प आदि है।

३—यौवन की विघ्नों पर जय—तुम जब नव यौवन मे रहते हो तव नव दम्पति रूप मे मिलकर परस्पर शरीर की मासल गुदगुदी के स्पर्श की अनुभूति लेते हो और स्वस्थ शरीर की सुगन्ध का अनुभव करते हो, उस प्रथम मिलन मे दो जीवनो का पारस्परिक आत्म समर्पण होता है। अखिल सौन्दर्य और परमानन्द का रस लेते हो। अहा प्रथम मिलन का वह स्वर्गिक आनन्द कितना मधुर होता है! इस प्रथम-मिलन मे नूतन आशा रहती है, नयी अभिलाषा रहती है, उच्चाकाक्षा रहती है, निरन्तर उद्यम करने की रुचि रहती है और होती है समस्त विघ्नो पर विजय प्राप्त करने की प्रेरणा।

४—विश्वास स्वभाव पूर्ति—तुम्हारे अन्दर एक विश्वास का सचार रहता है, सत् और असत् का तुमको ज्ञान रहता है। तुम मे दृढ श्रद्धा का निवास है और सत्य के प्रति अक्षय प्रेम की भावना तुम मे निहित है। ये सभी भावनायें तुम्हारे मन की मूर्तियाँ हैं। सहायता, त्याग और सहानुभूति जो मानवसभ्यता के स्तम्भ हैं, तुम्हारी सस्कृति की परिचायिका है। इन्ही गुणो मे तुम्हारे स्वाभाव की पूर्णता होती है।

५—मानव का तुम मानव—मानव मानव का पारस्परिक विश्वास और परिचय प्राप्त करना मानवता का विकास है। तुम ही ज्ञान और विज्ञान के नूतन अन्वेपण किया करते हो। व्यक्ति-व्यक्ति भिन्न होते हुए भी सब मे एक ही चेतना का प्रकाश है। तुम को परमात्मा का अनन्त वरदान प्राप्त है। तुम प्रतिक्षण उसका उपभोग करते रहो। तुम्हे तीनो लोको मे किस वात की कमी है? कौन सी वस्तु तुम्हें अप्राप्य है, यदि तुम केवल विशुद्ध मानव बने रह सको, पशुता की ओर न वढो।

३४— ताज

अवतरणिका—ताज महल के प्रति अन्य कवियो ने भी अपने उद्गार प्रकट किये हैं। किन्तु पन्त का दृष्टि-कोण अन्य कवियो से भिन्न है। अन्य कवि ताज की अद्भुत सुन्दरता और महत्ता पर भावुकता से बह जाते हैं। परन्तु पन्तजी ताज को देखकर उसकी महत्ता मे खो नही जाते हैं वह सयत रूप मे मानव की बुद्धि की

झुरमुट मे चिडियाँ 'टी वी टी टुट् टुट्' के स्वर मे चहक रही है, मानो वे अपने हृदय मे मीठे-मीठे सपने ढाल-ढाल कर बरसा रही है। विश्व का वे जिस भाति का सुखी और शान्तिमय चाहती है उस प्रकार का सगीत गा रही है। सायकाल को दिनभर के थके मादे मजदूर घर को लौट रहे है। विश्व का मानव समाज दिन भर के परिश्रम से जर्जर हो रहा है। पक्षि समुदाय उन दुखी प्राणियो के प्रति मानो वेदना भरे गीत गा-गाकर अपनी सहानुभूति बरसा रहे है। ये मजदूर थके हुए डगमगाते पैरो से अपने घर की ओर लौट रहे है। जीवन मानो उनके लिए भार स्वरूप हो रहा है, अत उनके पैर लडखडा रहे है, उनके दुख मे द्रवित होकर ये पक्षी सहृदयता के गीत गा रहे है। इन श्रमिको की रग-रग ढीली पड गई है, अत समवेदना मे प्रकृति उनकी थकान मिटाने का प्रयास कर रही है। सन्ध्या अपना सुन्दर सुवर्ण इन पर बिखर रही है और मन्द-मन्द पवन इन पर पखा झल रहा है। इस प्रकार इनमे एक नई स्फूर्ति एव नई चेतना का सचार हो रहा है। नर और प्रकृति का ऐसा पारस्परिक सहृदयता का सम्बन्ध सदा से चला आ रहा है और सृष्टि के साथ ही साथ प्रकृति और प्राणिजगत् की पारस्परिक सहानुभूति के काव्य का विकास उत्तरोत्तर होता चला जाता है।

२–गा सके आवे रवि—कवि प्रकृति से अपने जीवन मे प्रेरणा प्राप्त करने की प्रार्थना करता है कि मेरे अन्दर का कवि भी इन्ही पक्षियो की भाति मानव के दुखी जीवन के सहानुभूतिमय गीत गा सके और सन्ध्याकालिक प्रकृति इन पर कैसी स्नेहमयी वर्षा करती है? मै भी अपने गीतो द्वारा इनके दुख मे सान्त्वना दे पाऊँ। सन्ध्या का वातावरण बहुत धूमिल एव निराशामयी उदासी से भरा होता है। जगजीवन मे भी इसी भाँति निराशामयी सन्ध्या हो रही है। अत कवि प्रार्थना करता है कि मानव-जीवन मे पुन प्रभात का आगमन हो, आशा का सचार हो और सूर्य का सुखमय प्रकाश विश्व मे फैले।

३३—मानव

अवतरणिका—इसी गीत मे कवि का मानव परम प्रेमी बन गया है। ध्यान देने की बात है कि कवि प्रकृति प्रेम से धीरे-धीरे मानव जगत् की ओर आकृष्ट होता जा रहा है, वह मानव का परम भक्त हो गया है। वह मानव के शारीरिक, बौद्धिक एव मानसिक सौन्दर्य पर एक साथ मुग्ध है।

१—सुन्दर है रूपरग—विश्व मे फूल सुन्दर हैं। पक्षी सुन्दर है। किन्तु हे मानव! तुम इन सबसे अधिक सुन्दर हो। विश्व की समस्त सुन्दर वस्तुओ का सार लेकर तुम्हारी मूर्ति की रचना हुई है। अत सारी सृष्टि भर मे तुम चिर-सुन्दर हो, तुम निरुपम हो। तुम्हारा शरीर यौवन की ज्वाला से मढा हुआ है। तुम्हारी त्वचा बडी कोमल है। तुम सौन्दर्य के अकुर हो। अत सारी प्रकृति तुम

पर न्यौछावर है। प्रकृति की सब वस्तुएँ तुम्हारे उपयोग के लिए खुली हुई हैं। तुम्हारा रूप-रग छाया और प्रकाश की भाँति उज्ज्वल एव श्यामल है।

२—धावित शिख शोभन—तुम्हारी पतली-पतली नीली नसो मे मदिरा की भाँति मादक रुधिर का सचार निरन्तर होता रहता है। तुम्हारी दो आँखे ...नन्य सौन्दर्य की सृष्टि है। तुम्हारे स्वर मे स्वाभाविक सगीत का सार भरा हुआ है। तुम्हारा वक्ष-स्थल वडा विशाल है, तुम्हारी छाती का स्तनमण्डल का भाग सरोवर के कमल की भाँति सुन्दर है। लम्बी-लम्बी दो दृढ भुजायें प्रेम बन्धन के बन्धन हैं। जीवन रूपी वृक्ष का मोटा तना तुम्हारा विशाल धड है, और हाथ, पाँव, अगुलि, नख, शिख ये सब अग जीवन-वृक्ष के डाल पत्ते पुष्प आदि है।

३—यौवन की विघ्नों पर जय—तुम जब नव यौवन मे रहते हो तब दम्पति रूप मे मिलकर परस्पर शरीर की मासल गुदगुदी के स्पर्श की अनुभूति हो और स्वस्थ शरीर की सुगन्ध का अनुभव करते हो, उस प्रथम मिलन मे दो ...ना का पारस्परिक आत्म समर्पण होता है। अखिल सौन्दर्य और परमानन्द का ...लेते हो। अहा प्रथम मिलन का वह स्वर्गिक आनन्द कितना मधुर होता है! प्रथम-मिलन मे नूतन आशा रहती है, नयी अभिलाषा रहती है, उच्चाकाक्षा रहती निरन्तर उद्यम करने की रुचि रहती है और होती है समस्त विघ्नो पर विजय ...त करने की प्रेरणा।

४—विश्वास . . स्वभाव पूर्ति—तुम्हारे अन्दर एक विश्वास का सचार ...ता है, सत् और असत् का तुमको ज्ञान रहता है। तुम मे दृढ श्रद्धा का निवास और सत्य के प्रति अक्षय प्रेम की भावना तुम मे निहित है। ये सभी भावनायें ...म्हारे मन की मूर्तियाँ हैं। सहायता, त्याग और सहानुभूति जो मानवसभ्यता के ...म्भ हैं, तुम्हारी सस्कृति की परिचायिका है। इन्ही गुणो से तुम्हारे स्वाभाव की ...र्णता होती है।

५—मानव का . तुम मानव—मानव मानव का पारस्परिक विश्वास और परिचय प्राप्त करना मानवता का विकास है। तुम ही ज्ञान और विज्ञान के नूतन अन्वेषण किया करते हो। व्यक्ति-व्यक्ति भिन्न होते हुए भीसव में एक ही चेतना का प्रकाश है। तुम को परमात्मा का अनन्त वरदान प्राप्त है। तुम प्रतिक्षण उसका उपभोग करते रहो। तुम्हें तीनो लोको मे किस बात की कमी है? कौन सी वस्तु तुम्हें अप्राप्य है, यदि तुम केवल विशुद्ध मानव बने रह सको, पशुता की ओर न बढ़ो।

३४— ताज

अवतरणिका—ताज महल के प्रति अन्य कवियो ने भी अपने उद्‌गार प्रकट किये है। किन्तु पन्त का दृष्टि-कोण अन्य कवियो से भिन्न है। अन्य कवि ताज की अद्‌भुत सुन्दरता और महत्ता पर भावुकता से वह जाते हैं। परन्तु पन्तजी ताज को देखकर उसकी महत्ता में खो नहीं जाते हैं वह सयत रूप मे मानव की बुद्धि की

४१—महात्माजी के प्रति

अवतरणिका—[illegible] [illegible] युग-निर्माता होते हैं। [illegible] सभी कृतियों में प्राय पन्तजी महात्माजी के प्रति श्रद्धा के उद्गार प्रकट किये हैं। [illegible] इस कविता में बापू को कई दृष्टियों से देखा है।

१—निर्वाणोन्मुख लोकोज्ज्वल—शब्दार्थ—निर्वाणोन्मुख=नाश के समीप। शिखोदय=दीपक की जलती लौ। दिगन्त=दिशाओं के प्रान्त। अभिभव = दमन करना, मिटाना। लोकोज्ज्वल=संसार में चमकनेवाली।

तुम दीपक की वह अन्तिम लौ हो जिसने विनष्टप्राय मानव-आदर्शों को पुन प्रकाशित किया है और जिसकी ज्योति से आज दिशाओं के प्रान्त [illegible] हैं। मानव के जो आदर्श अतीत युग में सम्मानित थे उनके मिटने पर ही मानव की आत्मा विजयी होगी। इस प्रयत्न में यद्यपि तुम पूर्ण सफल नहीं हो पाये हो, फिर भी आपकी पराजय विजय की अपेक्षा अधिक ज्योतिमयी एवं पथ-प्रदर्शिका है।

१—"अन्तिम दीप शिखोदय" "अन्तिम" में विशेषण पर विचारणीय यह है कि इस विशेषण के बिना पद्य के भाव में कोई कमी न आती। अन्तिम दीप शिखोदय का ऐसा भाव व्यक्त होता है कि दीपक की लौ अब बुझने वाली है, अत अन्तिम है। ऐसा सोचना महात्माजी के प्रति उलटी अमंगल भावना होगी। यदि इस "अन्तिम" का तात्पर्य यह लगाया जाय कि यह दीप-शिखा अन्तिम है, इसके पश्चात् मानव समाज में कोई भी दीप-शिखा न उत्पन्न होगी, तो ऐसी भविष्यवाणी भी मानव-समाज के लिए अमंगल-सूचक होगी। महात्मा जी के पश्चात् जगत् में पुन कोई महापुरुष जन्मेगा ही नहीं ऐसा कहना अनुचित है। प्रत्येक युग-खण्ड अब तक अनेक महापुरुषों को जन्म देता आ रहा है। जगत् महापुरुषों का अक्षय कोष है।

२—मानव आत्मा साधारण—शब्दार्थ—प्रतीक=परिचायक। चिरन्तन=
नातन। वरेण्य=सर्वश्रेष्ठ।

तुम मानव आत्मा के प्रतीक हो। मानव आत्मा कितनी महान् हो सकती
, तुम इस बात के प्रमाण हो। तुम आदर्शों से ऊपर हो। तुम अपने आदर्शों के
ारण महान् हो, अपने यश से तुम शुभ्र हो और सनातन हो। तुम स्वय सिद्ध न
ाकर के भी जगत् के कल्याण के लिए साधना करने वाले महान् साधक बने हो।
नरश्रेष्ठ! आज तुम महान् विजयी बन गये हो क्योंकि तुमने सामान्य जनगण के
ृदयों पर विजय प्राप्त की है।

३—युग युग जन अन्तर—तुमने युग-युग की सस्कृतियो का
मर तत्त्व चुनकर ससार के लिए हितकर एक नूतन सस्कृति का शिला-
यास करना चाहा। इसके प्रभाव से बडे-बडे साम्राज्यो ने युग-युगो से सचित वैभव
त्थर की भाति ठुकरा दिया और आज जन-साधारण का हृदय पदाघात के अपमान
हन करने से मुक्त हो गया है।

४—दलित देश निष्फल—शब्दार्थ—दुर्दम=अदमनीय। ध्रुव=अटल। धुर
धर=भार वहन करने वाला। जातिशव=जाति रूपी शव।

तुम दलित देश के अदमनीय नेता हो, अटल हो और वीरो मे अग्रण्य तुमने
तप्राय भारतीय जाति को अपनी आत्मशक्ति से शक्ति प्रदान की। ससार की
भ्यता का पुन आमूलचूल नूतन रूपान्तर होना था, अतः तुम्हारे राम-राज्य का
वप्न अभी यो ही निष्फल नही हुआ है।

५—विकसित . निर्मित—शब्दार्थ—विकसित=व्यापक। व्यक्तिवाद=एक
यक्ति को ही महत्ता देने वाला सिद्धान्त। पराभव=तिरस्कार। सौध=महल।
र्ग व्यक्ति=समष्टि रूपी पुरुष। स्वर्णपाश=आकर्षक बन्धन। भव-सस्कृति=
वश्व-सस्कृति।

ससार मे व्यक्तिवाद बहुत फैल गया था। व्यक्तिवाद की महत्ता का विनाश
ापके प्रभाव से निश्चित होने वाला था। विश्व का सामन्तवाद बूढा हो गया था
ौर उसका स्वरूप केवल खँडहर की भाँति अवशिष्ट रह गया था, हे भारत के हृदय!
म्हारे साथ आज जगत् का विगत सास्कृत हृदय जर्जर होकर चूरचूर हो गया।
तीत की सस्कृति एव आदर्शो का पराभव हो गया था। जिन सस्कृतियो और आदर्शों
े फल स्वरूप ये प्रासाद और ऊँचे-ऊँचे भवन एक व्यक्ति या विशेष दल की सम्पत्ति
ानी जाती थी, आज मानव युगो से बद्धमूल व्यक्तिवाद के आकर्षक बन्धन को तोड
र मुक्त हो गया है। आज जन-मानवता की विश्व सस्कृति का निर्माण हो रहा है।

६—किये प्रयोग अवलम्बित—तुमने जन-जीवन पर नीति के सत्यो के अनेक
योग किये थे। क्योंकि अब तक के आदर्श केवल भावात्मक थे, क्रियात्मक नही थे।
त उनमे सामूहिक जीवन का हित सिद्ध नही हो सका था, ससार एक अश्वत्थ
ृक्ष की भाति है जिसकी जडें नीचे भूमि पर है और इसकी शाखायें नाना प्रकार